—चतुरसेन शास्त्री ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ४९ वाँ ग्रन्थ ।

अन्तस्तल ।

लेखक—

आयुर्वेदाचार्य पं० चतुरसेन शास्त्री ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ।

श्रावण, १९७८ विक्रम ।

अगस्त, १९२१ ई० ।

प्रथमावृत्ति] [मू० ॥=)

जिल्दसहितका मूल्य १) ।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

मुद्रक—
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
नं० ४३४, ठाकुरद्वार, बम्बई ।

समर्पण ।

जिसे अन्त तक छिपाया और जो अन्तमें स्वयं छिप गया; किन्तु जिसकी वास अन्तस्तलमें सदा-को बस गई है, उसी अन्तस्तलके अमर राजाकी दिव्य आत्माकी स्मृतिमें यह अभागिनी रचना समर्पित है।

उसीका—

चतुर ।

भूमिका।
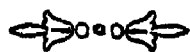
मुझसे अनुरोध किया गया है कि मैं 'अन्तस्तल' पर भूमिका लिखूं, पर 'अन्तस्तल' पर 'भूमिका' उठाना—हवामें किले बनाना—आकाशमें अट्टालिका उठाना है। इसके लिये गन्धर्वनगर-निर्माता अलौकिक 'इञ्जीनियर' दरकार है! 'अन्तस्तल' एक सच्चे जादूकी पिटारी है, मानस-भावोंके चित्रोंका विचित्र एल्बम है, अन्दरूनी बायसकोपकी चलती फिरती—जीती जागती—तसवीरें हैं, जिनके दृश्य दिलकी आँखोंहीसे देखे जा सकते हैं। चर्मचक्षुओंका यह विषय नहीं है। हृदयकी बातें हृदयहीसे जानी जा सकती हैं, जड़ लेखनीका यह काम नहीं है। फिर भी इस अन्तस्तलके विषयमें संक्षेपमें कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि—

"कागज पै रख दिया है कलेजा निकालके"।

अन्तःकरणके भावोंका सूक्ष्म विश्लेषण मनोविज्ञान-शास्त्रीका काम है। आजकल 'मनोविज्ञान' शास्त्र एक बड़े महत्त्वका विषय हो गया है। मनोविज्ञानके आचार्योंने अपनी गूढगवेषणाओंसे–बहुत बारीक छानबीनसे–इसे अत्यन्त समुन्नतदशामें पहुँचा दिया है।

मनोविज्ञानीका काम, कार्यकारण भावका निरूपण करना है। क्रोधके आवेशमें मनुष्यके मनकी क्या दशा होती है, उस समय उसमें किन किन भावोंका उदय होता है, क्यों होता है, उनका प्रभाव क्रोधाविष्ट व्यक्तिकी बाह्य आकृतिपर क्या पड़ता है, इत्यादि बातोंकी वैज्ञानिक खोज करना मनोविज्ञानके प्रवीण पारखीका काम है। मनोविज्ञान-प्रदर्शनका यह प्रकार, जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही गम्भीर भी है—सुगम नहीं है रोचक भी नहीं है—ऐसा होना स्वाभाविक भी है। कृषिशास्त्रका आचार्य या वनस्पतिविज्ञानका विद्वान् ईखके क्रम-विकाशका इतिहास वैज्ञानिक ढंगसे सुनाकर–ईखके पौदेकी वृद्धिका विधान और उसमें रससंचारका प्रकार समझाकर—श्रोताके लिये विषयमें इतनी सरसता या मधुरता नहीं ला सकता जितनी खंडसाली खांड खिलाकर या हलवाई मिठाइयाँ चखाकर। खंडसाली या

हलवाई गन्नेकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं करते। यह उनका काम नहीं। वह यह जानते भी नहीं कि मिठाईमें यह मिठास कैसे और क्यों कर उत्पन्न हो जाता है, फिर भी उनका व्यापार—काम—है बहुत मधुर, इसका साक्षी हर कोई है। यह सार्वजनिक अनुभव है।

कवि या सहृदय लेखकका काम भी कुछ ऐसा ही है। वह मानसिक भावोंकी वैज्ञानिक व्याख्या करने नहीं बैठता, सिर्फ मनोहर चित्र खींचता है, जिन्हें देखकर सहृदय-'समाखा'-दर्शक फड़क जाता है। कभी उसके मुँहसे आह निकलती है कभी वाह, कभी आँखोंमें आँसू आते हैं, कभी होठों पर मुस्कराहट। अन्तस्तलमें कभी कभीके प्रस्तुत भाव सहसा जागृत हो उठते हैं-छिपे हुए दिली जजबात आँखोंके सामने आकर नाचने लगते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'अन्तस्तल' इसका एक उत्तम उदाहरण है।

इसमें अन्तस्तलके चतुर चितेरेने बड़े कौशलसे-बड़ी सफाईसे मानसिक भावोंके विविध रूप-रंगके विचित्र चित्र खींचकर कमालका काम किया है। मैं उन्हें इस सफलतापर बधाई देता हूँ। 'अन्तस्तल' हिन्दीमें निःसन्देह अपने ढंगकी एक नई रचना है। यह पाठक और लेखक दोनोंके कामकी चीज है। समझदार पाठकोंके लिये यह शिक्षाप्रद मनोविनोदकी सामग्री है और लेखकोंके लिये भावचित्रणके दिग्दर्शनका बढ़िया साधन। इसकी वर्णनशैलीमें और भाषामें स्वाभाविकता है, इस कारण कहीं कहीं प्रान्तीयताकी झलक है, पर भावपूर्ण चित्रोंकी मनोहरतामें वह खटकती नहीं, उसे गुललालाका दाग, चाँदका धब्बा या कमलपुष्पपर पड़ी हुई शैवालकी पत्ती समझ सकते हैं!

मैं आशा करता हूँ हिन्दी साहित्यमें यह पुस्तक वह आदर और प्रचार पायगी जिसके यह योग्य है।

महाविद्यालय, ज्वालापुर।
श्रावण कृष्ण ३ शुक्रवार
संवत् १९७८ वि०।

पद्मसिंह शर्मा।

दुःखभरी दो बातें !

मेरी यह रचना विधवा है। हाजी मुहम्मदके साथ एक तौरसे मैंने इसका ब्याह कर दिया था। यह आदमी गुजराती साहित्य-मन्दिरका मस्ताना पुजारी था-और 'बीसमी सदी' नामक प्रख्यात पत्रिकाका सम्पादक था। सबसे प्रथम उसीकी दृष्टिमें यह रचना चढ़ी। उसने पागलकी तरह इसे लाड़ किया-मैंने भी अपने परायेकी परवा न कर उसीसे इसका ब्याह कर दिया! ब्याह होते होते ही तो वह मर गया !!!

कितनी हौंससे उसने इसे चाहा था! 'रूप'को सुनकर उसकी आँखें झूमने लगी थीं, दुःखको सुनकर वह रोया था और अनुतापको सुनकर वह उद्वेगके मारे खड़ा हो गया था। वह अच्छी तरह हिन्दी नहीं पढ़ सकता था, सुनता था। कितनी बार उसने इसका गुजराती अनुवाद करनेको कलम हाथमें ली-पर रख दी। उसने कहा—"दिलकी उमंग कुछ कम हो जाय—मज़ा जरा ठण्डा पड़ जाय—तब लिखूँगा।"

एक एक पंक्तिपर चित्र बनानेकी उसने तैयारियाँ की थीं। एक चित्रकार 'रूप' पर कुछ चित्र बना कर लाया भी था—पर वे उसे पसन्द न आये। उसने कहा—"लेखक जो कुछ कह नहीं सकता है—चित्रकार उसी कमीको पूरी करता है। उत्तम चित्रकार वही है। इन चित्रोंने तो इस अवगुंठनवती रचना-सुन्दरीको पशुकी तरह नंगी कर दिया है।" उसने वे चित्र रद्दीकी टोकरीमें डाल दिये थे।

वह एकाएक मर गया। साहित्यके भाग्य फूट गये। अब इस रचनाको क्या अलंकार मयस्सर होगा? हिन्दीके प्रकाशकोंकी दृष्टि निराली है—बहुत कम उनमें साहित्यके सौन्दर्यको परख सकते हैं। जो कुछ परख सकते हैं—उनकी दृष्टि बुर्दा-फरोशोंकी सी है। गुलामीके जमानेमें जब कोई खूबसूरत जवान लड़की बाजारमें बिकने आती थी तो बुर्दा-फरोश (मनुष्योंका व्यापारी) उसके सौन्दर्यको इस दृष्टिसे निरखता था कि बाजारमें इसके कितने दाम उठेंगे! हिन्दीके प्रकाशकोंकी यही दृष्टि है। लेखक अभागे इतने पतित और आत्माभिमान शून्य हो गये हैं कि अपनी अपनी रचना-सुन्दरियोंका हाथ थामें इन्हीं बुर्दा-फरोशोंके द्वार पर झख मारते फिरते हैं, और कहते ग्लानि होती है—उसके एक एक सौन्दर्य-स्थलको उघाड़ उघाड़ कर दिखाते हैं। यह मोल भावका महत्त्व है! यह कमीने पैसेकी अमलदारी है! मैं भी वैसा ही अभागा लेखक हूँ। अतएव मुझे यह आशा करनेकी इच्छा नहीं है कि मेरी यह रचना—जिसमें मेरे हृदयका समस्त रस (जैसा भी कुछ हो) भरा है—प्रकाशकोंके

घरमें कुलवधूका आदर और अलङ्कार पावेगी। फिर भी मुझे इतना सन्तोष है कि मैं इसे अच्छेसे अच्छे प्रकाशकके हाथमें सौंप सका हूँ।

मैं समझता हूँ कि हिन्दीमें यह अपने ढंगकी निराली शैलीकी रचना है। जब मैंने इसे लिखना शुरू किया था—तो मैंने इसे बावलेकी 'बड़' समझा था। सबसे प्रथम मैंने 'अनुताप' लिखा था। पर किसीको दिखाया नहीं; देर तक वह छिपा रक्खा रहा। एकाएक वह कागज मेरी स्त्रीके हाथ पड़ा—वे उसे हाथमें ले मेरे पास आईं। मैं सिटपिटा गया। मेरी ऐसी धारणा थी कि स्त्रियाँ स्वभावसे वहमी होती हैं और वे उपन्यासके मूलमें सचाईका कुछ सन्देह अवश्य करती हैं। परन्तु मेरा भय निर्मूल था—उन्होंने गद्गद् कण्ठसे मेरी उस रचनाको सराहा। उसके बाद डरते डरते मैंने उन्हें रूप दिखाया। उसे पढ़कर उन्होंने कुछ कहा नहीं, प्रशंसासे उत्फुल्ल नेत्रोंसे मेरी ओर देखकर चली गईं। वही मेरी प्रथम आलोचका थीं। उसके बाद जिन जिन मित्रोंको दिखाया—फड़क गये। मुझे साहस हुआ या धृष्टता—सो कुछ नहीं कह सकता; मैंने समझा यह तो रचना है और बढ़िया रचना है। मैंने उसे तब साहित्य-चटोरोंको दिखाया—सभीकी जीभ चटखारे लेने लगी।

इस रचनामें कुछ अभाव रह गये। कुछ नये निबन्ध बढ़ाने थे और कुछको संशोधन करना था। पर हाजी मुहम्मदके मरने पर जी बैठ गया—कितनी बार चेष्टा की, पर न नया लिख सका—न पिछलोंको सुधार सका। तबीयत हाजिर ही नहीं हुई।

अब जैसी है, हाजिर है। इसमें और कुछ नहीं हो सकता-किसी तरह नहीं हो सकता। इसी रूपमें पाठक इससे कुछ सन्तुष्ट हो सकेंगे तो मेरी अन्तरात्माकी सर्दी बहुत कुछ मिट जायगी।

प्रख्यात साहित्यभ्रमर श्रीयुक्त पण्डित पद्मसिंहजी शर्माको—जिनके हृदय सरोवरमें—अब और तबका, यहाँ और वहाँका, सब जातका-रस भरा पड़ा है और जिनका मस्तिष्क हिन्दी-संस्कृत-फारसी और उर्दूकी प्रायः समस्त साहित्यकी लायब्रेरी है—धन्यवाद देनेमें मैं अशक्य हूँ। जिन्होंने अत्यन्त बारीकीसे इस तुच्छ सी रचना पर अपनी छोटीसी किन्तु गम्भीर भूमिका लिखकर इसे उपादेय बना दिया है।

अलबत्ता मैं श्रीयुक्त पं० नाथूरामजी प्रेमीको धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इस अललटप्पू रचनाको अपनी ख्यातिलब्ध सीरीजमें स्थान देकर मुझे उपकृत किया है। इस सीरीजमें मेरी यह दूसरी पुस्तक है।

६-२-२१
बम्बई।

—श्रीचतुरसेन वैद्य।

अन्तस्तल ।

रूप ।

उस रूपकी बात मैं क्या कहूँ ? काले बालोंकी रात फैल रही थी और मुखचन्द्रकी चाँदनी छिटक रही थी, उस चाँदनीमें वह खुला धरा था । सोनेके कलसोंमें भरा हुआ था और उनका मुँह खूब कस कर बँध रहा था; फिर भी महक फूट रही थी । उस पर आठ दस चम्पेकी कलियाँ किसीने डाल दी थीं । भौंरे भीतर घुसनेकी जुगत सोच रहे थे । मदन कमान लिये खड़ा रखा रहा था । उसका सहचर यौवन अलकसाया पड़ा था, न उसे भूख थी न प्यास, छका पड़ा था ।

म बड़ा प्यासा था । हार कर आ रहा था । शरीर और मन दोनों चुटीले हो रहे थे, कलेजा उबल रहा था और हृदय झुलस रहा था । मैं अपनी राह जा रहा था । मुझे आशा न थी कि बीचमें कुछ मिलेगा । पर मिल गया । संयोगकी बात देखो कैसी अद्भुत हुई ।

और समय होता तो मैं उधर नहीं देखता। मैं क्या भिखारी हूँ या नदीदा हूँ जो राह चलते रस्ते पड़ी वस्तु पर मन चलाऊँ? पर वह अवसर ही ऐसा था। प्यास तड़पा रही थी–गर्मी मार रही थी और अतृप्ति जला रही थी। मैंने कहा—जरासा इसमेंसे मुझे मिलेगा? भूल गया, कहा कहाँ? कहनेकी नौबत ही न आई—कहनेकी इच्छा मात्र की थी। पर उसीसे काम सिद्ध हो गया—उसने आँचलमें छान कर प्यालेमें उड़ेला—एक डली मुस्कानकी मिश्री मिलाई और कहा—लो, फिर भूला, कहा सुना कुछ नहीं। आँचलमें छान, प्यालेमें डालकर, मिश्री मिला कर सामने धर दिया। चम्पेकी कलियाँ उसीमें पड़ी थीं—महक फूट रही थी। मैं ऐसी उदासीनतासे किसीकी वस्तु नहीं लेता हूँ—पर महकने मार डाला। आत्मसम्मान, सभ्यता, पदमर्यादा सब भूल गया। कलेजा जल रहा था—जीभ ऐंठ रही थी। कौन विचार करता? मैंने दो कदम बढ़ कर उसे उठाया और खड़े ही खड़े पी गया, हाँ खड़े ही खड़े!!

पर प्याले बहुत छोटे थे, हाँ बहुत ही छोटे थे। उनमें कुछ आया नहीं। उस चम्पे और चाँदनीने जो उसे शीतल किया था और उस मिश्रीने जो उसे मधुरा दिया था, उससे कलेजेमें ठण्डक पड़ गई। वह ठण्डक न कभी देखी थी न चखी थी। मैं मूर्खकी तरह प्याला लिये उसकी ओर देखने लगा। उसने शायद कहना चाहा "और लोगे?" मैंने कहना चाहा "जी तो करता है, बहुत ही प्यासा हूँ, प्याले बहुत ही छोटे हैं, तिसपर उनमें टूँटना निकला हुआ है, इनमें कितना आवेगा? क्या और है?"

उसने मानों कह ही दिया–"बहुत है, पर भीतर है, घड़ोंका मुँह खोलना पड़ेगा—बाहर तो इतना ही था। क्या बहुत प्यासे हो?"

सभ्यता भाड़में गई। कभी खातिरदारीका बोझ किसी पर नहीं रखता था। पराये सामने सदा संकोचसे रहता था— पर उस दिन निर्लज्ज बन गया। मैंने ललचा कर कह ही दिया—"बहुत प्यासा हूँ, क्या ज्यादा तकलीफ होगी? न हो तो जाने दो, इन प्यालियोंमें आता ही कितना है?"

उसने कहा—"तो चलो घर, मार्गमें खड़े खड़े क्यों? पास ही तो घर है"। मैं पीछे हो लिया।

ढकना खोलते ही गजब हो गया। लबालब था। गाँठ खोलनेका एक हलकाहीसा झटका लगा था, बस छलक कर बह गया। समेटेसे न सिमटा। उसने कहा—"पीओ, पीओ, देखते क्या हो? देखो बहा जाता है—मिट्टीमें मिला जाता है।"

मेरे हाथ पाँव फूल गये। मैंने घबड़ा कर कहा—"यह इतना सारा? इतना क्या मैं पी सकूँगा? यह तो बहुत है। और क्या छा-नोगी नहीं?" उसने कहा—"छाननेमें क्या है। यह आप ही निर्मल है। फिर तलछट किसको छोड़ोगे? पी जाओ सब। इतने बड़े मर्द हो—क्या यह नहीं पी सकते?"

मैंने झिझक कर कहा—"और मिश्री? जरासी मिश्री न मिला-ओगी?" उसने हँसकर कहा—"मिश्री रहने भी दो। ज्यादा मीठा होनेसे सब न पी सकोगे—जी भर जायगा। लो यह नमक मिर्च, चटपटा बना लो—फिर देखना इसका स्वाद!" इतना कहकर उसने जरा यों, और जरा यों बुरक दिया—वह नमक मिर्च काजल सा पिसा हुआ था, बिजलीकी तरह चमक रहा था। उसने स्वयं मिलाया, स्वयं पिलाया। भगवान् जाने क्या जादू था, फिर जो होश गया है अब तक बेहोश हूँ।

प्यार।
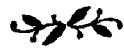
उसने कहा—"नहीं"

मैंने कहा—"वाह!"

उसने कहा—"वाह"

मैंने कहा—"हूँ-ऊँ"

उसने कहा—"उहुँक्"

मैंने हँस दिया,

उसने भी हँस दिया।

अँधेरा था, पर बाइसकोपके तमाशेकी तरह सब दीखता था। मैं उसीको देख रहा था। जो दीखता था उसे बताना असम्भव है। रक्तकी एक एक बूँद नाच रही थी और प्रत्येक क्षणमें सौ सौ चक्कर

खाती थी। हृदयमें पूर्णचन्द्रका ज्वार आ रहा था, वह हिलोरोंमें डूब रहा था; प्रत्येक क्षणमें उसकी प्रत्येक तरंग पत्थरकी चट्टान बनती थी, और किसी अज्ञात बलसे पानी हो जाती थी। आत्माकी तन्त्रीके सारे तार मिले धरे थे, उँगली छुआते ही सब झनझना उठते थे। वायु-मण्डल विहागकी मस्तीमें झूम रहा था। रातका आँचल खिसक कर अस्तव्यस्त हो गया था। पर्वत नंगे खड़े थे और वृक्ष इशारे कर रहे थे। तारिकायें हँस रहीं थी। चन्द्रमा बादलोंमें मुँह छिपा कर कहता था—'भई! हम तो कुछ देखते भालते हैं नहीं।' चमेलीके वृक्षपर चमेलीके फूल—अँधेरेमें मुँह भींचे गुपचुप हँस रहे थे। उन्होंने कहा—"जरा इधर तो आओ।" मैंने कहा—"अभी ठहरो।" वायुने कहा—"हैं! हैं! यह क्या करते हो?" मैंने कहा—"दूर हो, भीतर किसके हुक्मसे घुस आये तुम?" खटसे द्वार बन्द कर लिया। अब कोई न था। मैंने अघा कर साँस ली। वह साँस छातीमें छिप रही। छाती फूल गई। हृदय धड़कने लगा। अब क्या होगा? मैंने हिम्मत की। पसीना आ गया था। मैंने उसकी पर्वा न की।

आगे बढ़कर मैंने कहा—"जरा इधर आना"।

उसने कहाँ—"नहीं,"

मैंने कहा—"वाह!"

उसने कहा—"वाह,"

मैंने कहा—"हूँ—ऊँ"

उसने कहा "उहुँक्"

मैंने हँस दिया।

उसने भी हँस दिया।

लज्जा ।

हाय ! हाय ! ना, यह मुझसे न होगा ! तुम बीबीजी ! बड़ी बुरी हो, तुम्ही न जाओ । वाह ! नहीं, तुम मुझे तंग मत करो । मैं तुम्हारे हाथ जोड़ूँ—पैरों पड़ूँ—देखो हाहा खाऊँ, बस इससे तो हद है ? अच्छा तुम्हें क्या पड़ी है ? तुम जाओ । ठहरो मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ । ना, वहाँ तो नहीं, भला कुछ बात है ? इतनी बड़ी हो गई ? समझ नहीं आई । कोई तो है नहीं, अकेले हैं । कोई क्या कहेगा ? तुम्हें कहते लाज भी नहीं आती । हँसती क्यों हो ? देखो—यह हँसी अच्छी नहीं लगती । बस कह दिया है—मैं रूठ जाऊँगी । एक बार सुनी, दो बार सुनी । तुम तो हाथ धोकर पीछे ही पड़ गई, अच्छा जाओ आज मैं रसोई नहीं जीमूँगी, मुझे भूख नहीं है, मेरे सिरमें दर्द है—पेट दुखता है । अपनी ही कहे जाती हो, किसीके दुखकी भी खबर है । यह लो हँसी ही हँसी । इतना क्यों हँसती हो । हटो मैं नहीं बोलती—वाह !

मेरी अच्छी बीबी! बड़ी लाड़ो बीबी जी! देखो भला कहीं ऐसा भी होता है! राम राम। मै तो लाजसे गढ़ी जाती हूँ। तुम्हें तो हया न लिहाज। देखो हाथ जोड़ूँ, धीरे धीरे तो बोलो—हाय! धीरे धीरे, अरे नहीं, गुदगुदी क्यों करती हो? नोंचो मत जी! तुम्हें हो क्या गया है? कोई सुन लेगा, धकेलो मत। देखो मेरे लग गया। पैरका अगूँठा कुचल गया। हाय मैया! बड़ी निर्दयी हो, मैं तुम्हें ऐसा न जानती थी। अम्माजीके जानेसे तुम्हारी बन आई। अब मालूम हुआ, भोले चहरेमें ये गुन छिपे पड़े थे! डर क्या है? दिन निकलने दो। सब समझ लूँगी। आईं चलकर धक्का देनेवालीं। वाह जी! हटो—अब तुम मुझे मत छेड़ना—हायरे! मेरा अँगूठा।

न मानोगी? बड़ी पक्के दीदेकी हो। अच्छा, नहीं जाते—नहीं जाते—नहीं जाते, एकसे लाख तक नहीं जाते। कह दिया, कर लो क्या करना है। आज सब बदले ले लेना—जन्म जन्मके बैर चुकाना। आने दो अम्माजीको। तुम्हारे यह कैसे लच्छन हैं जी? ना, हमें यह छिछोरपन अच्छा नहीं लगता। राजी राजी समझती ही नहीं। कुछ बालक हो, वाहजी वाह, सुसरालमें जा कर यही लक्खन सीख आई हो। हटो! मैं तुमसे नहीं बोलती। अच्छा, आखिर मतलब भी कहो? काम क्या है? मैं क्यों अनहोनी करूँ? पानी तुम दे आओ, बुद्धोको भेज दो—मुझपर ही दण्ड क्यों?

हद्द हो गई। यह कैसी हठ है? न जाऊँगी—न जाऊँगी—न जाऊँगी—न जाऊँगी, बस—कितनी बार कहूँ? लो मैं रसोईमें जाये बैठती हूँ—नाकमें दम कर दिया—चैन नहीं लेने देतीं।

हाय करम ! भगवानने कैसे दुःख दिये—देखो मेरा जी अच्छा नहीं है। नहीं, मैं इतना हठ न करती—तुम्हारी बात क्या कभी टाली है ? आओ चलो—तुम्हारी कोठरीमें चलकर मजेसे सोवें। खूब गर्माई रहेगी।

क्यों ? इसमें क्या हर्ज है ? इसी तरह क्या रोज नहीं सोते थे ? आज ही मक्खीने छींक दिया ? चलो, नखरे मत करो। अच्छा देखो—आज तुम मेरी बात मान लो—कल जैसा तुम कहोगी मान लूँगी। बस अब तो राजी ! चलो उठो। उठो ! अब नखरे मत करो। मेरी बीबीजी बड़ी अच्छी हैं।

हे भगवान् ! हे जगदीश ! हे पारब्रह्म ! यह आज कैसा संकट आया। हे मुकुन्द मुरारी ! किसी तरह लाज बचाओ। बुरी फँसी। हाय करम ! अच्छा चलो—तुम भी साथ चलो—तुम्हें मैं छोड़नेवाली नहीं हूँ। चलो। अब नानी क्यों मरती है ? 'लगाके भुसमें आग जमालो दूर खड़ी,' तुम्हारी वह मसल है। मैं तुम्हें छोड़नेवाली नहीं। तुमने बहुत मेरा नाकमें दम किया है। ना—कितना ही मचलो—छोडूँगी नहीं। बनाओ—बहाने बनाओ। अब मेरी बारी है।

हर बातमें तुम्हारी ही चलेगी ? मैं कुछ हूँ ही नहीं। तो तुम्हें क्या बाघ खा लेंगे ? ते जाने दो मैं भी नहीं जाती। हरे राम ! इस दुःखसे तो मौत ही अच्छी ! अच्छा ! पर देखो—बाहर खड़ी रहना। देखो—तुम्हें मेरी कसम ! हाय ! हाय ! यह क्या कर रही हो। अच्छा आगे आगे चलो ! अरे ! धीरे धीरे। थोड़ीसी क्यों भागती हो ? बड़ी नटखट हो। देखो तुम्हारे पैरों पड़ूँ—खड़ी रहना। नहीं ते याद रखना मुझसे बुरा कोई नहीं। भला ! तुम्हें मेरी कसम।

वियोग।

वे मुझे महाशय कह कर पुकारते थे और मैं उन्हें हरीश कहा करता था। उनका पूरा नाम तो हरिश्चन्द्र था, पर मैं प्यारसे उन्हें हरीश कहा करता था। बचपनसे—जब कि वे नंगे हो कर नहाया करते थे—तबतक, जबतक कि वे बड़ेभारी इन्जीनियर हुए—मैंने बराबर उन्हें इसी नामसे पुकारा। इंजीनियर होनेके ९ दिन बाद ही तो वे मर गये।

बहुत दिन बीत गये हैं—धुँधलीसी याद है। मैं अपने घरके पिछवाड़ी, गेंद बल्ला खेल रहा था। रुईकी गेंद थी और बाँसका बल्ला। उन्होंने गलीके छोरसे आकर गेंद लपक ली। हरा कोट पहने थे और सिर पर सलमेकी टोपी थी। छोटा सा मुँह था और सुनहरे बाल कन्धेपर लहरा रहे थे। उम्र कितनी थी सो नहीं बता सकता, जिस बातको समझनेका ज्ञान नहीं था—आवश्यकता नहीं थी, अब वह कैसे याद आ सकती है? वे मेरी आखोंमें गड़ गये। मैंने आगे बढ़ कर कहा—"तुम खेलोगे?" उन्होंने कहा—"खिलाओगे?" मैंने खिला लिया। वही पहला दिन था। इस जन्ममें वही पहली मुलाकात थी। उसी दिनसे हम एक हुए।

महल्लेहीमें उनका घर था। पर वे उसमें कभी रहे नहीं थे। उनके पिता विदेशमें नौकरी करते थे। उन्हींके साथ वे भी वहीं रहते थे। अब वे वहीं स्कूलमें भर्ती हुए, मैं फेल हो कर, एक साल पीछे आ रहा। हम लोग एक साथ पढ़ने लगे। एक श्रेणीमें बैठने लगे। कैसे सुन्दर वे दिन थे, यह कहना असम्भव है। एक बैन्च पर बैठते थे। उनका हिसाब अच्छा था। मैं उसमें कमजोर था। वे स्लेट मेरी ओर झुका देते थे। मैं मास्टरकी नजर बचा—उनकी नकल कर लेता था। उसके बदलेमें कुछ चित्र और कवितायें मुझे उन्हें तयार कर देनी पड़ती थीं। इनका मुझे शौक था और उन्हें चाव। एकके अपराध पर दूसरा पिट लेता तो मानों खजाना पा लिया। घण्टों पहले स्कूलमें जा बैठते थे। बातोंका तार कभी नहीं टूटता था। रोग तो देखा नहीं था, चिन्तासे तब तक ब्याह नहीं हुआ था, शोकका अभी जन्म ही नहीं हुआ था। मौज थी, उछाह था, प्रेम था। हम दोनों उसे खूब खाते थे और बखेरते थे।

मुझे रोज एक पैसा पिताजी देते थे। अठवाड़ेके पैसे इकट्ठे करके मैं उनकी दावत करता था। जंगलके एकान्तमें चाँदनीकी चमकमें हम लोग एक दूसरेको देखा करते थे। अब कुछ याद नहीं रहा, क्या बातें होती थीं; पर इतना कह सकता हूँ कि काँग्रेसमें, बड़े लाट-की कौन्सिलमें व्याख्यान देकर, बड़े बड़े राजा महाराजाओंसे मुलाकात करके जो गर्व—जो प्रसन्नता आज नहीं मिलती है, वह उस बातचीतमें मिलती थी। जिस दिन वह बात न होती थी उस दिन नींद न आती थी, भोजन न रुचता था। छुट्टीका दिन बुरा दिन था। गर्मीकी छुट्टियाँ तो काल थीं। उसमें वे पिताके पास चले जाया करते थे। दो महीनेका वियोग होता था।

११

जब वे ज्यादा लाड़में आते थे तो 'तू तू' करके बोलते थे। और भी ज्यादा प्यार करते तो घूसोंसे घड़ते थे। मैं उन्हें कभी न मारता थीं, उनकी माता पर फरियाद करता था वे उन्हें धमका कर कहती था—"पगले! बड़े भाईसे इस तरह बोला करते हैं? ऐसा गधापन किया करते हैं?" तब वे अपनी माको इतरा कर जवाब देते—"अम्मा! तेरा बेटा बड़ा बदमाश हो गया है, यह बिना पिटे ठीक न होगा।" बुढिया झुँझला कर वहाँसे बड़बड़ाती उठ जाती थी। हम लोग खिलखिलाते ही ही, हू हू करते, धमर कुटाई करते, अपने रस्ते लगते थे।

कितनी बार अँधेरे कमरेमें हम एक साथ सोये हैं। कितनी चाँदनी रातें गंगाके उपकूल पर बिताई हैं। कितने प्रभातोंकी गुलाबी हवामें हमने एक साथ स्वर मिला कर गाया है। दोपहरकी चमकीली धूपमें स्वछन्द विहार किया है। वर्षा ऋतुमें हम जँगलमें निकल जाते, माधोदासके बागसे एक टोकरा आम भर ले जाते और नहरमें जल-विहार करते और आम चूसते—गुठिलियोंकी चाँदमारी करते। गर्मीके दिनोंमें प्रातःकाल ही खेतपर आ बैठते और ताजे ताजे खर्बूजे खाते। वे प्रायः कहा करते—"तुम मुझसे इतना प्रेम मत बढ़ाओ। मुझे डर लगता है—तुम नाराज हो गये तो मैं कैसे जीऊँगा।" कभी वे मेरे हाथको देखकर कहते—"महाशय! तेरी उम्रकी रेखा तो बहुत ही छोटी है।" मैं देखकर कहता—"अच्छा मैं मर जाऊँगा तो तू रोवेगा तो नहीं?" वे बड़ी देर सोचकर कहते—"रोऊँगा तो जरूर" इसके बाद वे कुछ और कहना चाहते थे—पर मैं समझ जाता था—मुँह भींच देता था, बोलने देता ही न था।

हमलोग कभी झूठ न बोलते थे, कभी छल न करते थे। पर हाँ लड़ कभी कभी पड़ते थे। पर वह लड़ाई बड़े मजेकी होती थी। उसमें जो हार मान लेता था—उसीकी जीत होती थी और उसीकी खुशामद होती थी। जीतनेवालेको उसे जंगलमें या छत पर लेजाकर गलेमें बाँह डाल कर मिठाई खिलानी पड़ती थी। कभी कभी बड़ा सा गुलाब जामुन मुँहमें ठूँस देना पड़ता था। और कभी कभी ? हाँ उसे भी अब न छिपाऊँगा, वही गुलाब जामुन आधा उसके मुँहमें देकर आधा दाँतोंसे कुतर लेना पड़ता था। हमलोग एक दूसरेको पढ़ा करते थे। हमारे बीचमें कोई न था। हम दोनों एक थे। हममें एक प्राण था, एक रस था, एक दिल था—एक जान थी।

पर यह देर तक रही नहीं। हृदयसे भीतर न रहा गया। वह हवा खाने बाहर निकला। कुछ काम काजका भार भी उस पर पड़ा। बस हवा बह चली, तार टूट गया। मोती बिखर गये। बुद्धि बढ़ गई। अपनेको पहचानने लगे। पाजी ज्ञानने कान भर दिये। डायन बुद्धिने बहका दिया। हमने अपनी अपनी ओरको देखा। अपनी अपनी सुध ली। उसी क्षणसे परस्परको देखना कम हुआ। परस्परकी सुध लेनेकी सुध ढीली पड़ गई। वही ढील कहाँकी कहाँ ले गई ? न पूछो—कथाका यह भाग बहुत ही कड़ुआ है !

हम लोग अपने अपने रस्ते लगे। अब चिट्ठियोंका तार बचा था—वहीं केवल पुल था। पहली चिट्ठी पूरे १५ दिनमें मिली थी। गुलाबी लिफाफा था। वह फटकर चूर हो गया है। पर अब तक धरा है। स्वप्नमें भी न सोचा था कि उसकी उम्र उनसे बड़ी होगी। कैसा सुन्दर वह पत्र था। सरल तरल प्रेमकी वह वस्तु आज तक जीवनको जीवन देती है। फिर तो कितने पत्र आये गये। अभी तक इतना जरूर

था—हम लोग बुद्धिमान अवश्य हो गये थे, पर पत्रमें बुद्धिमानीको काममें न लाते थे।

तीन साल तक पत्रव्यवहार बन्द रहा। पर समाचार मिलते रहे। दोपहरका समय था। मैं भोजनके आसन पर जाकर बैठा। मेरी स्त्री थाली परस रही थी। एक कार्ड मिला। उसमें उनका मृत्युसमाचार था। मैं मरता तो क्या? न रोया, न बोला, न भोजन छोड़ा। चुप-चाप भोजन करने लगा। उठकर बैठकमें लेट गया। रोना फिर भी न आया। बहुत इरादा किया पर व्यर्थ। हार कर सो गया।

पर अब ज्यों ज्यों दिन बीत रहे हैं, बात पुरानी हो रही है, मैं रोता हूँ। जब अकेला होता हूँ तब रोता हूँ। जब कोई दुःख देता है तब रोता हूँ। जब कोई धोखा देता है, अपमान करता है तब रोता हूँ। जब कोई चिन्ता होती है तब रोता हूँ। जब उत्तम भोजन सामने आता है तब रोता हूँ। जब कोई बात हँसीकी देखता हूँ तो रोता हूँ। किसी बालकको हरा कोट पहने देखता हूँ तो रोता हूँ। कहीं ब्याह होते देखता हूँ तो रोता हूँ। मेरे जीवनके प्रत्येक दैनिक कार्य इसी योग्य हो गये हैं कि बिना रोये उनमें स्वाद ही नहीं आता। हजार जगह रोता हूँ, जन्म भर रोऊँगा।

कभी उन्हें स्वप्नमें देखता हूँ। वही स्कूलकी पुस्तकोंका बण्डल बगलमें, वही खिलवाड़की बातें—वही ऊधम, वही ही-ही-हा-हा !: वही धौलधप—सब होता है—हू बहू होता है। पर! पर आँख खोलकर देखता हूँ तो मालूम देता है—वह सब स्वप्न है। वे दिन बीत गये हैं। अब मैं बड़ा हो गया हूँ। जवान हो गया हूँ और अकेला रह गया हूँ। और? और वे मर गये हैं—पृथ्वीपर हैं हीं नहीं!

अतृप्ति ।

हृदय ! अब तुम क्या करोगे ? तुम जिसके लिये इतना सज धज कर बैठे थे उसका तो जवाब आ गया। जन्मसे लेकर आज तक जो तुमने सीखा था—जिसका अभ्यास किया था, उसकी तो अब जरूरत ही नहीं रही।

न जाने तुम्हारा कैसा स्वभाव था। तुम सब कुछ फिरके लिये उठा रखते थे। तुमने तृप्त हो कर कभी उससे बात नहीं करने दी। आँख भरकर कभी उसे देखने नहीं दिया। मन भर कर कभी प्यार

नहीं करने दिया। तुम यह सब काम फिरके लिये उठा रखते थे। तुम कहते थे—डर क्या है? कोई गैर तो है ही नहीं, अपनी ही वस्तु है। फिर देखा जायगा। अब कहो—अब भी फिर देखनेकी आशा करते हो?

तुम वर्तमानको कुछ समझते ही न थे। तुम उसे स्वप्न कह कर पुकारते थे। कभी कभी उसे छाया कह कर उसका तिरस्कार करते थे। मैं तुम्हें कितना समझाता था—वर्तमानसे लाभ उठाओ, वर्तमान दौड़ा जा रहा है। इसे पकड़ लो। पर तुम आलसीकी तरह नित्य यही कहते थे—जाने भी दो, वह भविष्य आता है। वही पका हुआ सुख है—वही अनन्त है। यह वर्तमान तो मुसाफिरकी तरह भाग दौड़में है। इसमें कितना सुख भोगा जायगा? आने दो भविष्यके धवल महलको। वहाँ तृप्त हो कर पीवेंगे और जी भर कर सोवेंगे। लो अब बताओ कहाँ हैं—अब वे अट्टालिकायें? वह धवल महल? मैं बहुत भूखा हूँ, प्यासा हूँ, थका हुआ हूँ। मैं अब चलकर रस पीऊँगा और जरा सोऊँगा।

क्यों? सुस्त क्यों हो गये? ठण्डे क्यों पड़ गये? चुप क्यों हो गये? बोलो न, मेरा जी घबड़ा रहा है। तुम्हें देखकर बेचैनी बढ़ रही है। सच कहो मामला क्या है? तुम्हारे विश्वासपर, तुम्हारी ही बातोंमें आकर मैंने अपने जन्म जन्मान्तरोंकी पूँजी लगा दी थी। तुम्हारी योग्यतापर मुझे भरोसा था। मैंनें तुम्हें देखा भाला नहीं, कुछ खोज-जाँच नहीं की। तुमने जो कहा, आँख कान बन्द करके मान लिया। अब बताओ क्या करूँ? न तब तुम्हारा कहना टाला था—न अब टालूँगा।

बताओ न ? अब क्या करूँ ? चुप क्यों हो ? स्तब्ध क्यों बैठे हो ? क्या कारबार एकदम फेल हो गया ? या दिवाला निकल गया ? मैं अब कहींका न रहा ! बोलो न, इस तरह चुपचाप आह भरनेसे तो न चलेगा।

वे दिन अब भी याद हैं। मानो वही दृश्य—वही समय—वही छटा—वही सब कुछ आखोंमें फिर रहा है। पर आँखोंके सामने कुछ नहीं है। हाय कैसी वह नदी थी, कैसा उस पर स्वच्छ चन्द्र और नीलाकाश चमक रहा था, कैसा उसका प्रतिबिम्ब जलमें पड़ रहा था, कैसी उसके तटके श्याम छायारूप वृक्ष और लतायें झुक झुक कर पंखा कर रहीं थीं। और तुम मुझे कुछ भी पेट भरके देखने नहीं देखने देते थे। जब मैं चन्द्रको देखता था तब तुम कहते—नहीं, पहले इस जलकी छटाको देखो। जब मैं उसे देखता था—तब तुम कहते—नहीं, पहले इस निकुंज-छायाको देखो। मैं जब उसे देखता तब तुम कहते थे—नहीं, पहले इस छप छप शब्दको सुनो। फिर तुम मेरी आँखें बन्द कर देते थे। मुझसे तुम्हें क्या जलन थी ? सुखसे तुम्हें क्या चिढ़ थी ? तृप्तिसे तुम्हें क्या द्वेष था ?

तुम्हारी वह कुलबुलाहट—चुलबुलाहट—कहाँ गई ? अब क्यों इस तरह सुस्त सिर नीचा किये बैठे हो। मेरे सर्वनाशकारी वंचक ! मैं तुम्हें दया करके छोडूँगा नहीं।

किसीकी भी नहीं सुनते थे, ऐसे धुनके अन्धे हो गये थे। हँसी रुकती ही न थी, चैन पड़ता ही नहीं था। इतना रोका था, धमकाया था, फटकारा था। पर सब चिकने घड़े पर पानीकी तरह ढल गया ? लो अब बैठे बैठे रोओ !

दुःख।

यह असम्भव है। मैं आपसे ब्याह नहीं कर सकती। मैं बहुत दुःखी हूँ। मुझे क्षमा कीजिये। मैं भीतर ही भीतर रोगिणी हो रही हूँ। डाक्टरने कहा है कि तुम + + + नहीं नहीं, मैं यह बात आपको अपने मुँहसे नहीं सुनाऊँगी। आप मेरा मोह त्याग दीजिये। भूल जाइये। यह कठिन है, पर अभ्यास बड़ी वस्तु है। मैंने अभ्यास किया है, आप भी कीजिये। हम लोग बहुत देरमें मिले। समय बीत चुका था। सुख और शान्ति यह मेरे भाग्यमें नहीं थी। क्यों मेरा बूढ़ेसे ब्याह होता और क्यों मैं सुहागकी रातको विधवा होती। मैं इतना भी सहती—बहुत स्त्रियाँ सहती हैं। पर आप क्यों मिल गये! यही कठिन हुआ। यही नहीं सहा जाता। आग जल रही है। जी जला जाता है—पर धैर्य्य और अभ्याससे वशमें करूँगी। यह सच है कि सुखमें प्रलोभन है, पर मैंने उसे चखना एक ओर रहा—छू कर भी नहीं देखा। यही खैर हुई। वरना क्या होता? आज क्या यह पत्र लिख सकती? मन इतना साहस कहाँ पाता? आँसू आ रहे हैं, शरीरका रक्त मस्तकमें इकट्ठा हो रहा है और नसोंकी तन्त्री झन-झना रही है। रह रह कर मनमें आता है इस पत्रको फाड़ दूँ। पर यह असम्भव है। इतनी हिम्मतसे—इतने साहससे—इतनी वीरतासे जो पत्र लिखा है उसे फाड़ूँगी नहीं। क्या आप इसका मूल्य समझेंगे?

मैं समझती हूँ इस पत्रको पढ़कर आपको वेदना होगी। पर क्या किया जाय ? उसे सह लीजियेगा—मेरी ओर देखकर सह लीजियेगा। मैं अबला स्त्री हूँ। मुझमें दम ही कितना है। बचपनमें पशु पक्षियोंको चार दाने डालकर मुझे कितना गर्व होता था! मैं कितना इतराती थी! यहीं तक मैं दुनियामें किसीको सुख दे सकी। मेरी सेवाका पृथ्वी पर यही उपयोग हुआ। मेरा मानव-जीवन धिक्कार हुआ। पर मुझे यह कभी न मालूम था कि ऐसा उत्तरदायित्व भी तुच्छ स्त्रियों पर आ जाता है। अनेकोंकी रक्षामें समर्थ आप ? आपका सुख दुःख मेरे हाथमें ? नहीं नहीं, मुझे इतना न दबाइये। इतना बोझ सहनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। मूर्खा अबलामें और कितना बल होगा ? आप कहें—तो मैं आपका नाम लेकर गंगामें डूब मरूँ, या नाम जप जप कर भूखी प्यासी मर जाऊँ। जरूरत हो तो चमड़ीकी जूती बनवा लीजिये। मोल बेच दीजिये। पर! पर मुझसे सुख मत माँगिये। मुझसे सहयोग न होगा। सुख एक तो मेरे पास है ही नहीं —दूसरे जो है भी—वह जूठा, ठण्डा और किरकिरा है—आपके योग्य नहीं है। आप उधरसे ध्यान हटा लें, वह मोरीमें फेंकने योग्य है। क्या वह मैं आपको दे सकती हूँ ? उससे तो यही अच्छा है कि आप उसके बिना ही दुखी रहें।

मैं अपने भाग्य पर फिर हाय करती हूँ। कोई चारा नहीं, कोई बस नहीं, कोई उपाय नहीं। मैं जानती हूँ आप मुझे क्षमा कर देंगे। आप देवता हैं—आप सज्जन हैं। आप स्वभावसे ही दीन दुखियोंको प्यार करते हैं, आप धन्य हैं। मैं भी आपको प्यार करती। पर क्या करूँ, प्यारमें तो चाहना है और चाहना करनेका अधिकार भगवान् जानते हैं मुझसे निरपराध छीन लिया गया है। प्रभुकी इच्छा पूर्ण होगी। शरीरसे अच्छे रहना।

अनुताप।

किसीको मुँह नहीं दिखाता हूँ, पर लज्जा फिर भी पीछा नहीं छोड़ती है। छिप कर रहता हूँ पर मनमें शान्ति नहीं है। दिन रात भूलनेकी चेष्टा करने पर भी स्मृतिकी गम्भीर रेखा मिटती नहीं है। हृत्पटल पर उसका घाव हो गया है। उधर ध्यान पहुँचते ही वह घाव कसक उठता है। मनकी ज्वाला साँसके साथ भड़क उठती है। आँसुओंकी अविरल धारा सूख गई—पर उसे न बुझा सकी। साँसकी धौंकनीसे वह भड़कती है। चाह मर गई और आशाकी जड़को कीड़ा खा गया। रक्त ठण्डा पड़ गया, जीवनका पता नहीं—क्या इरादा रखता है। भविष्यकी रात घोर अँधेरी है—उसमें एक तारा भी नजर नहीं आता। वर्तमान अत्यन्त क्षणिक है—पर उसके रोम रोममें विकलता है। मन जैसे सूख गया है और मैं जैसे खो गया हूँ।

उस दिनके बाद ही सोचा था—बस अब सँभल गया। अब तक ठगाया गया हूँ, अब न ठगाया जाऊँगा। कामका त्याग कर दूँगा। वासनाको धक्का दे डालूँगा—चाहका गला घोंट दूँगा—हृदयको फाँसी लगा लूँगा—और चुपचाप निश्चेष्ट भावसे मृत्युके दिनकी बाट देखूँगा। किन्तु यह सब कुछ तो किया,—कर्म भी त्यागा, वासनाको भी धक्का दिया, चाहका भी गला घोंटा, हृदयको फाँसी भी दी, पर चुप चाप निश्चेष्ट भावसे मृत्युके दिनकी बाट न जोह सका। इन सबके साथ स्मृतिको भी संखिया दे सकता तो यह सब सफल होता। अब सब बनने पर भी स्मृति बीचमें आ कर काम बिगाड़ देती है। वह मेरी उजाड़ और ठण्डी शान्तिमें आग लगा देती है। मैं चुपचाप—निश्चेष्ट मनसे मरनेके दिन नहीं पूरे कर पाता हूँ।

वह दिन मुझे याद है—अच्छी तरह याद है। उस दिन मेह बरस रहा था—पर मूसलाधार पानी न था। रिम झिम वर्षा थी। उस दिन, हाँ उसी दिन उसने मुझे देखा—या मैंने उसे देखा—कुछ याद नहीं—शायद—दोनोंने दोनोंको देखा। उस देखनेमें विष था—पर हमने उसे अमृत समझा। हाँ, दोनोंने अमृत समझा। भूल हुई। उसी दिन हम मर गये थे, पर समझा जी गये हैं। उसी धोखेमें हम दोनों—मुस्कराये थे! आह! मूर्खता!

वह कुछ बोली नहीं। लजा कर चली गई। मैंने मनमें कहा—कैसी अपूर्व है, कैसी अलौकिक है। तब मैं निर्लज्जकी तरह उसकी ओर देखता ही रहा। उसने मेरी निर्लज्जता देखी नहीं—जानेके बाद उसने पीछे फिर कर देखा ही न था। मुझे उस ओर ध्यान न था। जाती बार जो वह राहमें मुस्कुराहट बखेर गई थी, उसी पर मैंने आँखें बिछा दीं।

उसके बाद क्या हुआ था ? ठहरो, सोचता हूँ—हाँ उसके बाद एक दिन पानका बीड़ा देने आई थी। वह बीड़ा अभी तक—अभी तक मेरे बक्समें रक्खा है। खाया नहीं था। उस समय मैंने उसे प्रिय चिह्न समझ कर रख लिया था। यह सोचा भी न था कि यह मेरा सहचर होगा। कदाचित् वह मेरा भविष्यफल था। अथवा इतिहास था। क्यों कि जब वह मेरे हाथमें आया था—हरा भरा—और रसपूर्ण था। सुगन्धकी लपटके मारे दिमाग मुअत्तर हो रहा था। किन्तु ज्यों ज्यों उसका रस सूखता गया, त्यों त्यों उसमें मेरी समता होती गई। आज उसमें रस गन्ध नहीं है, बिल्कुल सूखा पत्ता है। मैं भी रसगन्धहीन सूखा—बिल्कुल सूखा पत्ता हूँ। मेरे जीवनमें और उस पानमें यह समता होगी, इसका मुझे कुछ भी आभास नहीं था—उसे भी नहीं था।

उसके पतिपर मैं सदासे नाराज था। वह मेरा मूर्ख चपरासी था। किन्तु भोला, सच्चा, और हँसमुख था। मेरी झिड़कीको हँस कर सह लेता था और हाथ जोड़ कर क्षमा माँगता था। इसीसे वह निभ रहा था! पर उसी बदलीके दिनसे उसके दिन फिरे। मेरी कृपादृष्टि उमड़ आई। मैंने अपनी स्त्रीके द्वारा सुना कि वह इस भाग्यपरिवर्तनका कारण अपनी स्त्रीको समझता है! बात सच थी। मैं लज्जासे धरतीमें गड़ गया। पर असल बात और थी—वह पीछे खुली। उसका यह विश्वास था कि मेरी स्त्री बड़ी भाग्यवान् है, उसके गौना हो कर घरमें आते ही मालिककी कृपादृष्टि और वेतनवृद्धि हुई। वह उसे लक्ष्मीके नामसे पुकारने लगा था। पहले उसके विचार पर आश्चर्य हुआ था, पर अब उसका कोई कारण न रहा।

वह बुढ़िया ? ओफ—उसका स्मरण आते ही दम घुटने लगता है—मुद्दतसे मेरे पास आती थी। कभी पैसा माँगने और कभी पुराना

कपड़ा माँगने। वह मुझे बड़े मीठे स्वरसे 'बेटा' कह कर पुकारती थी, पर मेरे हृदयमें उसके लिये कभी मातृभाव उदय नहीं हुआ। उसकी सूरत ही ऐसी थी। छोटी छोटी साँप जैसी आँखें, सिकुड़े हुए अपवित्र होठ और बिल्ली जैसी चाल—मुझे भाती न थी। मैं सदा उससे दूर भागता था। फटकारता, गाली देता, पर वह अपनी लल्लो पत्तो नहीं छोड़ती थी। उस दिन—उसके बाद ही वह आई थी। वह प्यारकी पुतली थी और वह घृणाकी डायन थी। कुछ भी तारतम्य न था—पर मेरी बुद्धि चैतन्य हुई या मलिन कुछ नहीं कह सकता—मैंने तारतम्य निकाल लिया। ठीक कीचड़ और कमलके समान। उस दिन मैं उसे देख कर मुस्कराया—एक चवन्नी बखसीस की। उसने अपनी मनहूस आँखोंकी धुन्ध पोंछ कर एक बार चवन्नीकी ओर और एक बार मेरे मुस्करानेकी ओर देखा। मैंने उसे पास बैठाया। बहुतसी बातें कीं, नहीं—नहीं उन्हें बहुत चेष्टा करके भुलाया है—अब याद नहीं करूँगा। उन बातोंकी परछाँई—ठीक अँधेरेमें दीयेकी तरह—आज भी मेरे मनोमन्दिरमें काँप रही है। उसीके द्वारा सब कुछ हुआ—उसी छुरीसे मैंने सेंध लगाई। उसीके हाथों मैंने वह छकड़ा भरा रूप—मनों यौवन खरीदा। चोरीका माल था—सस्ता ही मिला। कुछ मिठाईके दोनें, कुछ सुगन्धित तेल, कुछ साधारण वस्त्र, बस।

उस दिन जब उसने आत्मसमर्पण किया था—वह मदमाती थी—पर उसकी आँखोंमें आँसू थे। वह पापसे डर रही थी। थर थर काँपती थी। प्रलोभन बहुत ही भारी था। वह जीत न सकी, हार गई। उसकी चाहमें ग्लानि मिली थी। हर्षमें भय था—रसमें विष था! कलेजा धड़कता था और बदन काँपता था। मैंने इसकी

परवाह न की। मेरी प्यास भड़क रही थी। रस निकट ही था। मैंने उसे भुलानेको बहुतसी बातें कही थीं—वे सब झूठी थीं। पर उसने उन पर विश्वास कर लिया था। वह अन्तमें एक क्षणको मुस्कराई भी थी।

पर मैं उसे खिलखिला कर हँसा न सका। इधर मेरा ध्यान न था। पहले ही मैं छक गया। वह निमन्त्रणमें न्योते हुए ब्राह्मणकी तरह मेरे प्रेम और अधिकारकी प्रतीक्षामें बैठी रही। वह मुझे दिलसे चाहती थी—यह बात तब भी मालूम थी—पर तब इस बातका मनने मूल्य नहीं लगाया था।

उस दिन त्रयोदशी थी। ठीक याद है—फाँसीकी तारीखकी तरह ठीक याद है। वह भविष्य होती है—यह भूत थी। कोई ९ बजे होंगे। मन्दवायु बह रही थी। रात दूधमें नहा रही थी। आकाश हँस रहा था। वह मेरे भेजे हुए फूलोंके गजरे पहिन कर आई। चाँदनीने उसके मुखको और भी उज्ज्वल कर दिया था। मैं उसीकी ओर देख रहा था और वह भयसे चारों ओर देख रही थी। उसका स्वामी तब भी मेरा नौकर था।

उस समय मैं प्रेमका कंगाल नहीं था। मेरे घरमें प्रेमसरोवर लहरें मार रहा था। वह प्रेम नहीं, पाप था। तब मैंने पापकी परवाह न की। मैंने उसे देख कर भी न देखा। उस समय उसे देखे बिना कल नहीं पड़ती थी। आज उसे सोच कर काँप उठता हूँ।

जब वह गर्मागर्म थाल मेरे भोगमें था, तब एक दिन—उन दिनों उसका पति मेरा नौकर था—मैंने उससे कुछ उसका जिक्र किया था। शायद याद नहीं—उसने क्या कहा था; पर भाषा उसकी गवाँरू और अलंकारशून्य थी। फिर भी उसमें उत्कट स्त्री-

व्रत और स्त्रीप्रेमका वर्णन था। इतना मुझे याद है कि अपनी स्त्रीका जिक्र करते करते उत्फुल्लताके मारे उसके आँसू आ गये थे। मुझे इस बातके प्रारम्भमें जो सुख मिला वह तत्क्षण ही विलीन हो गया। उसी दिन मैंने अपनेको तुच्छ समझा—उसी दिन मनमें अनुतापका बीज उगा। उसके बाद? उसके बाद ही उसने मुझे पहचाना। प्रथम उसने मौन कोप किया, पीछे अवज्ञा की, तदनन्तर गुस्ताखी की और अन्तमें उसने सामना किया। निदान मैंने अपनी क्षमतासे काम लिया—मैंने उसे जूतोंसे पिटवा कर निकलवा दिया। हाय!!

अब कुछ कण्टक नहीं था। लोकलज्जा भी नहीं थी। आँख फूट चुकी थी। मैं दोनों हाथोंसे खाने लगा। पर सब खाया नहीं गया। बहुत था। जितना पेटमें समाया खाया। बाकी? जिस तरह बच्चे आवश्यकसे अधिक पाकर—पेट भरने पर इधर उधर बखेर देते हैं उसी तरह—वह रूप—वह यौवन—मैंने भी बखेर दिया।

घरमें रखनेको जगह न थी। वह मुद्दत तक ठोकरोंमें पड़ा रहा। उससे रुचि हट गई। उस पर मक्खियाँ भिनकने लगीं। मैंने उसे—हाँ हाँ—उसे उठवा कर बाहर फिकवा दिया! ओफ!!!

फिर बीचमें भेट नहीं हुई। केवल मरनेसे प्रथम मैं उसे उसका सन्देश पा कर देखने गया था। वह खानगी वेश्याओंके महल्लेमें—नीचेके खनमें—एक सील और दुर्गन्धभरी कोठरीमें पड़ी थी। शरीर मलमूत्रमें लथपथ हो रहा था। कोनेमें एक मिट्टीका घड़ा लुड़क रहा था, भीतर उसमें पानी था, और ऊपर ओग बह रहे थे। गूदड़े गीले और मिट्टी जैसे थे। उसका शरीर जल रहा था। उस पर ओढ़ना नहीं था। घरमें नरकका वास था। मैं नाक दबा कर—मन

मार कर उसके पास गया। उसने मेरी ओरसे मुँह फेर लिया। बोली नहीं। मैं कुछ न कह सका। मैंने थोड़ा पानी लेकर उसे पिलाना चाहा, पर उसने सतेज स्वरमें कहा–"पापी–विश्वासघाती–छलिया–हट परे हो–काला मुँह कर। मैं तेरे हाथका पानी नहीं पीऊँगी।" मैं कुछ भी न कर सका—मर भी न सका। वह मर गई।

उसके बाद? उसी महीनेमें मेरे घरका दिया बुझ गया। जिस दिन मेरा बच्चा मुझे मिला—उसी दिन मेरी स्त्री चल बसी। मैंने रातभर जाग कर—रो कर बच्चेको जीवित रक्खा।

एक दिन मैं अपने बच्चेको खिला रहा था। एक आदमी आया। उसकी सूरत भूत जैसी थी। दाढ़ीके बाल बढ़कर उलझ गये थे। आँखोंमें कीचड़ भर रही थी और मुखसे लार टपक रही थी। शरीर पर वस्त्र नहीं था, केवल एक चिथड़ा था। लड़के उसके पीछे धूल फेंक फेंक कर हल्ला मचा रहे थे। वह मेरे पास आ कर बच्चेको घूरने लगा—बच्चा डर कर मेरी छातीसे चिपक गया। मैंने उस पागलको फटकारा। वह मेरी ओर देख कर कुछ बड़बड़ाया। मैंने उसे पहिचान लिया। कलेजा धक हो गया। रक्तकी गति रुक गई। मैंने कुछ पैसे उसकी ओर फेंक दिये और उससे कहा—जाओ जाओ। पैसे लेकर उसने लड़कोंको लुटा दिये और फिर मेरे बच्चेको घूर घूर कर बड़बड़ाने लगा। बच्चा रो उठा—मैं भीतर चला आया। मेरे घर तब कोई नौकर न था। उसी रातको बच्चा रोगी हुआ और उसके तीन दिन बाद वह भी ठण्डा हुआ। मरती बार वह मुस्कराया था।

मैंने घर–बार–देश–सब त्याग दिया है, पर, जिसे त्यागना चाहता हूँ उसे किसी तरह नहीं त्याग सकता हूँ—किसी तरह नहीं त्याग सकता हूँ ! !

शोक ।

यह मेरा पहला ही बच्चा था । जब यह उत्पन्न हुआ था तब मेरी अवस्था २३ वर्षकी और मेरी स्त्रीकी १७ वर्षकी थी । मुझे वह दिन याद है । उस दिन छोटी दिवाली थी । प्रात:काल ज्यों ही उषाकी पहली किरण पृथ्वीपर पड़ी—त्यों ही बिटुआका अवतरण हुआ । उस रातभर मैं सोया नहीं था । नई बात थी,

नया उछाह था, नया सुख था। मैं दौड़ दाईके घर—दौड़ सौर गृहमें—दौड़ बैठकमें फिर रहा था। काम कुछ न था–पर बिना दौड़ धूप किये जी न मानता था। जब दाईने आकर कहा कि "बखशीश लाओ, बेटा हुआ," तो मेरे शरीरमें खूनकी गति रुक गई थी—मैं उसे एक टक देखता ही रह गया था। मैंने हारकर उसीसे पूछा था "बोल क्या लेगी?" और माताने आकर अपना कँगन उसे दे डाला था।

उस घटनाको आज पूरे ७ महीने १३ दिन हुए हैं। आज मैंने उसे धरतीमें गाढ़ दिया। मेरे साथ मेरे और दो तीन बन्धु थे। सबने जीजानसे सहायता दी। एकने गढ़ा खोदा–एकने उसमेंसे मिट्टी निकाली—एकने मेरे लालको उसमें रख दिया—उसके ऊपरसे सबने जल्दी जल्दी मिट्टी डाल दी। उनका कहना था—ऐसे काममें भी यदि वे सहायक न हुए, ऐसे मौकोंपर ही यदि उन्होंने तत्परता न दिखाई तो उनकी मित्रता ही क्या? उनका बन्धुत्व फिर किस काम आवेगा?

परसों शामको जब मैंने उसे देखा था, तब वह मुझे देखकर हँसा था—अपने नन्हें नन्हें हाथ ऊपर उठाये थे। पर मैंने उसे गोदमें लिया नहीं। मुझे डर था कि कहीं बुखार फिर न चढ़ जाय। पर बुखार चढ़ा और जब उतरा, तब बचुआ भी उतर गया। मैं व्यर्थ ही डरा—गोदमें भी न ले सका! कुछ तो सुख मिलता, कुछ तो तसल्ली होती। उसके बाद वह फिर न हँसा। आज वह बिल्कुल सफेद हो गया था। आँखें आधी बन्द थीं—साँस नहीं था—शरीर गर्म था—हाथ पैर नर्म थे—स्त्री रो रही थी—मित्रगण कफन लपेट रहे थे—पर मैं दौड़ा गया, डाक्टरको बुला लाया। मैंने दाँत निकालकर रिरयाकर उनसे कहा—"डाक्टर साहेब! फीस चाहे जो ले

लो, पर इसे एक बार अच्छी तरह देख दो, क्या यह बेहोश हो गया है ? शरीर देखो कितना गर्म है।" डाक्टरने करुण दृष्टिसे मेरी ओर देखा, प्रेमसे मेरे कन्धेपर हाथ धरकर कहा—"मर्द हो, मर्दकी तरह विपत्तिमें धैर्य धरो, शोकमें स्त्रियोंकी तरह घबराओ मत, व्यर्थकी आशा और मृगतृष्णाको छोड़ दो। भगवान्‌की इच्छा पूरी होनी चाहिये।" और वह पूरी हुई।

मेरे हाथ पाँव टूट गये। दिल बैठ गया, पर मैं खड़ा रहा। मैंने आवाज करारी बनाये रक्खी—आँसू भी नहीं गिरने दिया—पर मन नीचेको धसकने लगा। मित्रोंने कहा—चलो खड़े क्यों हो ? मैंने कहा—चलो। मैंने ही उसे हाथोंपर पर रखा था—वह फूलकी तरह हलका था !

आसमानका इतना ऊँचा जीना वह कैसी सरलतासे चढ़ गया ? यादसे दिलकी धड़कन बढ़ती है। जिगरमें दर्द उठता है। गई। वह चाँदसी सूरत गई—वह आँखका नूर गया—वह हृदयकी तरावट गई—वह गई—वह होठोंकी लाल रंगत, वह मुस्कराहट—वह—वह—वह—वह सब चली गई !! चली गई।!! जैसे फूलसे सुगन्ध उड़ जाती है, जैसे नदीका पानी सूख जाता है, जैसे चन्द्रग्रहण पड़ जाता है, जैसे ?—ठहरो सोचता हूँ—जैसे ?—नहीं कुछ याद नहीं आता। जैसे !........हाँ ! जैसे दीयेका तेल जल जाता है—वैसे ही उसकी नन्हींसी जान निकल गई थी।

मेरी स्त्रीने कहा—कहाँ रख आये ? इतनी सर्दीमें ? उस गीली मट्टीमें ? अक्ल तो नहीं मारी गई ! जो बचुआको सर्दी लग जाय ? ये गदेले और रजाई तो यहाँ पड़ी हैं। जो बचुआकी हड्डियोंमें ठण्ड बैठ जाय तो क्या खाँसी दम लेने देगी ? इसी लिये तुम्हें दिया था ?

ठहरो मैं लिये आती हूँ। वह पागलकी तरह दौड़ी। मेरे सिरमें कई गोलीसी लग रहीं थीं। भतीजीने कहा—कहाँ है भैया? चाची! ठहर मैं लाती हूँ—चलो बताओ कहाँ है? बूढ़ी मा बोली नहीं। रो रही थी, रो रही थी, रो रही थी, चुप—मौन—रो रही थी। चुपचाप ही उसने बेटीको छातीसे लगा लिया। मैं स्त्रीको कुछ न कह सका। वह मेरे पैरोंपर पड़ी थी—मैं मानो आस्मानकी ओर उड़ रहा था—आँखें निकली पड़ती थीं—दम घुट रहा था—मैंने कमीजका बटन जोरसे तोड़ डाला। मैं खम्भेका सहारा लिये खड़ा रहा।

वह फिर एक बार मिला। सन्ध्या काल था और गंगा चुपचाप बह रही थी। वह चान्दीसी रेतीमें फूल जमा जमा कर कुछ सजा रहा था। मैं कुछ दूर था। मैंने कहा—आ मेरे पास आ। उसने ताली पीट कर कहा—ना, मेरे पास आ। मैं गया। वहाँकी हवा सुगन्धोंसे भर रही थी। मैं कुछ ठण्डासा होने लगा। उसके चहरे पर कुछ किरणें चमक रही थीं। मैंने कहा—"बिटुआ! धूपमें ज्यादा मत खेलो।" उसने हँस दिया। सुन्दरता लहरा उठी। उसने एक फूल दिखा कर कहा—"अच्छा, इस फूलका क्या रँग है?" मेरा रक्त नाच उठा। अरे! बेटा तो बोलना सीख गया। मैंने लपक कर फूल उसके हाथसे लेना चाहा—वह और दूर दौड़ गया—उसने कहा—"ना इसे छूना नहीं। इस फूलको दुनियाकी हवा नहीं लगी है और न इसकी गन्ध इसमेंसे बाहरको उड़ी है। ये देवपूजाके फूल हैं—ये विलासकी सजाईमें काम न आवेंगे।" इतना कह कर बिटुआ गंगाकी ओर दौड़ कर उसीमें खो गया। मैं कुछ दौड़ा तो—पर पानीसे डर गया। इतनेमें आँख खुल गई। घुप अँधकार था। हाय वह स्वप्न था! वह भी आया और गया? अब?—

चिन्ता ।

क्या मैं ऐसा था ? मेरा चहरा ऐसा था ? यही मेरा शरीर था ? मेरी माता होती तो उससे पुँछवाता ? कैसा कुन्दन सा रँग था, कैसा मांसल शरीर था । ताऊजी कहा करते थे—लड़केको किसी भिड़ ततैयेने तो नहीं काट खाया है ? ताई उन्हें फटकारकर कहती थीं—वाहजी ! खबरदार जो मेरे छोरेको नजर लगाई है। लाल सिंदूरिया रंग था—आँखें मांसमें घुस गई थीं। स्कूल

मास्टरके हजार डाटने पर भी हँसी नहीं रुकती थी। पिता बार बार कहते—अरे बेटा! गम्भीरतासे रहो—हर समय नहीं हँसा करते। माताने नाम रखा था 'चटोरदास।' खट्टा मीठा—ताजा बासी जो सामने आता, सामने आनेकी देर थी खानेकी नहीं। और नींद? नींदका क्या पूँछते हो? उधार खाये बैठी रहती थी। खाते खाते सो जाता था—सुना आपने? खाते खाते। मौज थी जो हृदयमें उमड़ रही थी—बिजली थी जो नस नसमें भर रही थी। हाय! कहाँ गये वे दिन? वे मेरे बचपनके दिन? वे सुनहरे, प्यारे दुलारे दिन? वे दगाबाज दिन? किस गढ्ढेमें मुझे धकेल गये? जवानी? बुरा हो इस जवानीका, ईश्वर किसीको न दे यह जवानी। मेरा नाश बन कर छाती पर चढ़ी है, और अब काल बन कर सिर पर मँड़रा रही है। डायन न खाने देती है—न सोने देती है—न चैनसे साँस लेने देती है। कुलच्छनी कुलटा अपनी ही ओर देखती है अपनी ही ओर। यह गत तो बन गई है, पर मरी नहीं, हैजा नहीं हुआ—इसे काल नहीं आया। मक्खियाँ तो भिनकने लगीं हैं—गलियारेमें पड़ी रहती है। आँसू पीती है और गम खाती है—फिर भी जवान बनी हुई है—उफ है—तुफ है!

कहाँ गई वह नींद? वह भूख? वह हँसी? वह मौज? बैठा रहता हूँ तो सिरमें विचारोंकी रई चलती रहती है, लेटता हूँ तो खूनकी बूँदें नाचती हैं, सोता हूँ तो स्वप्नोंका ताँता बँध जाता है, खाता हूँ तो खाना ही मुझे खाने लगता है, करूँ क्या? उद्धारका—छुटकारेका—कोई भी तो उपाय नहीं दिखता। कुछ भी तो नहीं नजर आता। क्या मरना पड़ेगा? अभीसे? इतनी जल्दी? अभी तो इच्छा नहीं है। पिताजी इस उम्रमें मेरे पिता भी नहीं हुए थे। ताऊजी अभी जीवित

हैं। मैं अभीसे क्यों ? पर इस तरह तो निर्वाह होना कठिन है—मजबूरी है। अच्छा मरूँगा। मजबूरी है।

पर मौत है कहाँ ? उसका दफ्तर भी कहीं ढूँढ़ना होगा। उसके मुनीम गुमाश्ते चपरासी—इन्हें हक देना होगा ? यह तो कायदेकी बात है ! यह देखो—गालोंकी हड्डियाँ निकल आई हैं—माथेमें गढ़ा पड़ गया है। आँखें मगजमें धँस गई हैं—चहरे पर स्याही दौड़ गई है—शायद वह आ रही है—पर हाय ! हाय ! मैं तो मरनेसे पहले ही कुरूप हुआ जाता हूँ।

आशाने कितने झाँसे दिये थे, उत्साहने कितनी पीठ ठोकी थी, मनने कितनी हिम्मत बाँधी थी—सब सटक सीताराम हुए। सब खसक गये। बनीके सब साथी थे। अकेली जवानी कबतक चलेगी ? वे हवाई किले मृगतृष्णा निकले। सबसे वाजदावा देनेको तयार हूँ—पर निकलना कठिन है, गुनाह बेलज्जत। मरना झपना सब औरोंके लिये—तिस पर कृतज्ञताका पता नहीं—जिक्र भी नहीं। मार डाला, अधमरा कर डाला, प्राण निकलें तो प्राण बचें ! ठहरो—अभी खानेकी इच्छा नहीं है। ना—अभी नहीं सोऊँगा। सोचने दो—हटो—सब भागो—कोई मेरे पास मत आओ—मेरा ध्यान मत भंग करो—मैं कुछ सोच रहा हूँ। हटाओ—इस बच्चेको हटाओ—वरना तमाचा मार दूँगा। मुझे कोई अच्छा नहीं लगता। स्त्री बीमार है तो भाड़में जाय। बाप मरता है तो मरे। बहन भीख माँगती है तो माँगे। मैंने क्या सबका ठेका ले रखा है ? हटो हटो—मगज मत खाओ। मुझे एकान्तमें छोड़ दो—मुझे सोचने दो—मुझे कुछ सोचने दो—जरूरी काम सोचना है। ओफ ! सिर घूमता है। ओफ—ओफ !

लोभ ।

बहुत करेगा मार लेगा, गाली दे लेगा, चार आदमियोंमें फजीहत करेगा। बस ? इससे तो हद है। कोई फाँसी तो दे ही नहीं सकता ? मैं तो कौड़ीका देवाल हूँ नहीं। इधरकी धरती उधर हो जाय। सूरज साला धरतीमें उगने लगे—प्रलय हो जाय—पर इनमें तो दाँत गढ़ने दूँगा नहीं। अजी "जान है तो जहान है और जर है तो दुनिया घर है।" कुछ यहीं तो नाल गड़ा ही नहीं है। अच्छों अच्छोंके वतन छूट जाते हैं। अच्छों अच्छोंको परदेश रहना पड़ता है। इसमें पशो-पेश क्या ? काम बनाया और सटक सीताराम। कहा भी है—" देश चोरी

और परदेश भीख।" कौन पूछता है ? सब इसीकी पूजा करते हैं—इसीका सारा नाता है—इसकी गर्मी ही मजेकी गर्मी है। सच कहा है किसीने—"धरा पाताल और दिपे कपाल।" इसीकी इज्जत, इसीका बल, इसीका सारा कारबार है। यही न रहेगा तो शरीर क्या काम आवेगा ? कौन खरा है ? मुंह बनाकर सामने आवे। सबको जानता हूँ। कमाकर कौन धनी बना है ? राम कहो। "घर आये नाग न पूजिये बाँवई पूजन जाय।" मैं ऐसा अहमक नहीं हूँ। भगवानने घर बैठे लक्ष्मी भेजी है—तो मैं क्या ढकेल दूँ ? वाह ! यह खूब कही। सबके यहाँ इसी तरह चुपचाप आती है। गा बजा कर किसके गई है ? लोग तो खून तक करते हैं ! हाँ ! खून ! इसीके लिये। मैंने किसीका गला तो नहीं काटा ? जो होगा देखा जायगा। मुझे इतना कच्चा मत समझना—आठोंगाँठ कुम्मेत हूँ। इसीको प्रारब्ध कहते हैं। बिना कमाये आवे—और बे लाग आवे। और यों थोड़े बहुत झापट झगड़े तो लगे ही रहते हैं। थोड़ा कसा रहना चाहिये—सब संकट कटेंगे। माल क्या थोड़ा है ? अच्छा गिन कर देखूँ। नहीं। यह शायद ठीक न होगा। कोई देख ले तो ? अभी मामला रफा दफा तो होने दो। कहीं भागा थोड़ा ही जाता है—यह तो प्राणसे भी बढ़ कर प्यारा है। यही स्वर्ग है—यही भगवान् है—इसीके पीछे भटक रहा था—आज मिला है—आओ। भगवान्। आओ मेरे बाप ! आओ मेरे बुजुर्ग ! मेरे कुलदेव ! वंशोद्धारक ! आओ—आओ—आओ ! मेरी छातीको ठण्डी करो। तुममें विश्वासघातका विष्ठा लगा होगा तो मैं तुम्हें धोदूँगा। तुममें छलका दाग होगा तो माँज दूँगा। खूनका छींटा होगा तो रगड़ दूँगा। किसी तरह आये तो ! आओ—आओ—आओ। आओ मेरे इष्टदेव ! आओ।

क्रोध।

—:०:—

सिर्फ हजार रुपयेहीकी तो बात थी ? वह भी नहीं दे सका ! देना एक ओर रहा पत्रका उत्तर तक नहीं दिया। एक–दो–तीन–चार–सब पत्र हजम किये ? सब पचा लिये ? यही मित्रता थी ? मित्रता ? मित्रता कहाँ है ? मित्रता एक शब्द है, एक आडम्बर है, एक विडम्बना है, एक छल है—ठीक छल नहीं छलकी छाया है। वह भूतकी तरह बढ़ती है, रातकी तरह काली है और पापकी तरह काँपती है।

तुम लखपती थे ? वे तुम्हारे लाख रुपये सुरक्षित लोहेके संदूकोंमें बन्द रखे हैं ? और मैं ? मैं हाड़ मांसका आदमी जिसकी छातीमें हृदय—जीवित हृदय—धरोहर धरा है—इस तरह यातना—अपमान कष्ट और भयंकरतामें झकोरे ले रहा हूँ ? मित्रताकी ऐसी तैसी–मित्रताके बापकी ऐसी तैसी ! निष्ठुर पाखण्डी सोनेके डले ! बिना तपाये और कुचले तुझमें नर्मी आना ही असंभव था !!!

तुम ! तुम मेरे भक्त थे; क्या यह सच है ? भक्ति किसे कहते हैं मालूम है ? चुप रहो। बको मत, ज्ञान मत बघारो। मैं ही मूर्ख हूँ। मेरे उपदेशोंको तुमने मनोहर कहानी समझा होगा ! ठीक, अब समझा, तुम मनोरंजनहीके लिये मेरे पास आते थे ! धीरे धीरे अब सब दीख पड़ता है। जब मैं आवेशमें आकर अपने आविष्कृत सिद्धान्त जोर शोरसे तुम्हारे सामने बोलता था—तब तुम हँसते थे। उस तुम्हारी हँसीका तब मतलब नहीं समझा था—अब समझा। उफ—ऐसे भयंकर गंभीर सिद्धान्तोंको तुम मनोरंजन समझ कर सुनते थे ! ठीक है। पिशाचोंको श्मशानमें नृत्यहीकी सूझती है। प्रकृति कहाँ जायगी ! पर मुझे मनुष्यकी परख नहीं हुई। मैं पूरा वज्र मूर्ख हूँ। मैंने भैंसको बीन बजा कर सुनाई थी—हाय करम! हाय तकदीर !!!

कुछ भी समझ नहीं पड़ता। अचम्भा है। मनुष्यरूप पाकर मनुष्य हृदयसे शून्य कैसे जीते हैं ! अमीरोंके हृदय कहाँ है ! सारे अमीर मर कर भेड़िए चीते, सिंह, साँप, बिच्छू, बनेंगे ! ये मनुष्य-जन्ममें अपनी बुद्धिसे जिस रूपका अभ्यास कर रहे हैं, वही रूप इन्हें मिलेगा ! वाह ! बड़ा अच्छा तुम्हारा भविष्य है। मैंने सुना है—पुराने खजानों पर साँपोंका पहरा होता है। तुम सब धनी लोग वही साँप हो। फर्क इतना है कि तुम बननेवाले हो और वे बन गये हैं—वे तुमसे सिर्फ एक जन्म आगे हैं। उनके तुम्हारे बीचमें केवल एक मृत्युका पुल है। उसे पार किया कि बस असली रूप पा गये।

हे सफेद पगड़ी और सफेद अँगरखेवालो ! हे टमटम मोटरगाड़ियोंमें खिचड़नेवालो ! हे अपाहिजो ! अभागो ! रोगियो ! निपूतो ! हीजड़ो !

तुम पर मुझे दया आती है। किन्तु तुम्हारा भविष्य देख कर मुझे सन्तोष होता है—सुख मिलता है।

मेरा बच्चा मर गया। उसे दूध नहीं मिला। मेरी स्त्रीके स्तनोंमें जितना दूध था—वह सब वह पिला चुकी। जब निबट गया, तब लाचार हो गई। बाजारसे मिला नहीं। पैसा न था। बिना पैसे बाजारमें कुछ नहीं मिलता। पहले, जब संसारमें बाजार नहीं थे, घर थे, तब सबको सब कुछ मिलता था। चीजके होते कोई तरसता न था। अब खुल गये बाजार और बाजारमें उन्हींको मिलता है जिनका बाजार है। बाजार है पैसेका। पैसेसे ही बाजार है। बच्चा कई दिन सूखे मुँह सूखे स्तन चूसकर सिसकता रहा। अन्तमें ठण्डा पड़ गया। मेरे प्यारे मित्र! तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है, वही मेरा एक बच्चा था। अब मैं किसे देखूँ! अच्छा दिखाओ तो तुम्हारा बच्चा कितना मोटा हो गया है। हरे राम! साँपके बच्चेको तो देखो, कैसा फूला है। तुमने इसे इतना क्यों चराया है? इतना खून यह क्या करेगा? इसे कितने दिन इस योनिमें रखनेका इरादा है? यह अपनी काँचली कब बदलेगा?

मेरी कुशल पूछते हो? ठीक है, बाजबी है। बहुत दिनसे मिली नहीं थी। अच्छा सुनो। भयानक युद्धमें फँसा हुआ हूँ। इसी युद्धमें मेरे स्त्री बच्चे ढह चुके हैं—एक भूखा रहकर और दूसरा रोगी रहकर। मैं भी रोगी हो गया हूँ। अब खाया नहीं जाता। चिन्ताने जठराग्निको बुझा दिया है। सिर झनझनाता रहता है। नींद मर गई है। उसकी लाशको तुम्हारे बच्चे चुरा ले गये हैं। पर खैर, मुझे सोनेकी फुर्सत भी नहीं है। होंस भी नहीं है। युद्ध कर रहा हूँ—कंगालीसे युद्ध कर रहा हूँ। दरिद्रता भीषण दाँत कटकटा कर असंख्य शस्त्र लिये झपट रही है। हाँ हाँ, अब तक परास्त किया है।

यह युद्धका मध्यभाग आ गया है। ठहरो दो हाथमें साफ है। अभी जीतकर आता हूँ। सबर करो—सबर। सबर। तब तक तुम अपने बच्चेको मलाई खिलाओ। अजीर्ण बढ़ाओ। बढ़ाओ। और मेरा युद्ध-कौशल, वीरता, यदि देखनी हो, तो आओ मैदानमें—देखो, लड़-नेको नहीं, देखनेको। साँपोंका लड़नेका काम नहीं है। वे तो अँधेरेमें—जहाँ पैर पड़ा बस वहीं—काट लेनेके मतलबके हैं। अच्छा जाने दो। मैं फतह करके आता हूँ। देखो, जिस धनको, जिस सोने-के ढेरको तुम छातीमें छिपाये उसकी आराधना कर रहे हो, उसे मा बाप, भैया, लुगाई, चाची, ताई, नानी नाना समझ रहे हो, उसी पर—हाँ उसी पर—चाहे वह तुम्हारा कुछ ही क्यों न हो—बिना किसी तरहका लिहाज किये उसी पर—उसी ढेरकी छाती पर पैर धर-के ताण्डव नृत्य करूँगा। अपनी स्त्रीकी हड्डियोंकी ठठरियोंकी मैंने 'भोगली' बनाई है और अपने बच्चेकी कच्ची खालसे उसे मँढ़ लिया है। यह है मेरा डमरू। वह बजेगा ढम ढमाढम। दिग्दिगन्त गूँज उठेंगे। फिर मेरा थिरक थिरक कर ताण्डव नृत्य होगा। हा! हा! हा! ताण्डव नृत्य होगा। फिर, नाच कर, उसी ढेरको ठुकरा कर, जूतोंमें कुचल कर फेंक दूँगा। उसपर थूक दूँगा। उसपर पेशाब कर दूँगा। तब जी चाहे तो ले जाना। लूटकर ले जाना, आँख बचा कर ले जाना। धन है, वह लात मारनेसे, थूकनेसे, मूतनेसे, अपवित्र अपमानित तो हो नहीं जायगा! उसकी रबड़ी, मिठाई, फल लाकर बच्चेको खिलाना। मोटा हो जायगा, रंगत चढ़ जायगी। और तुम्हारी स्त्री? हा! हा! हा! उस धनका घाघरा उसके लिये परम कल्याण-कारक होगा। वही हजार रुपया—उसमेंसे दान धर्ममें लगा देना। बस, स्वर्गमें तुम्हारे बाप तुम्हारे लिये द्वार खोले खड़े रहेंगे।

मगर ठहरो। खुशीसे उछल न पड़ना। यह लूटका माल देरसे मिलेगा। अभी युद्ध भी विजय नहीं हुआ है। सम्भव है, इसी युद्धमें मेरी जवानी मारी जाय। उसीके सिर तो इस युद्धका सेहरा है! वही तो इस युद्धकी सेनापति है! उसके चारों ओर गोली बरस रही है। यदि वह मारी गई और तब विजय हुई तो उसके अनन्तर ताण्डव नृत्य करनेमें भी कुछ समय लगेगा। ओढ़नेको रक्तभरी ताजी खाल चाहियेगी और वह भी हाथीकी! पर मैं वह किसी काले रंगके भारी सेठकी निकालूँगा, रुपया देकर मोल ले लूँगा। मेरा सफेद केश, दन्तहीन मुख, उसपर सज जायगा। एक बार नाच कर उसे मैं ठोकर मार दूँगा। फिर जिसके भाग्यमें हो, वह उसे ले जाय।

मेरी यह विजय-वीरताकी कहानी जो सुनेगा उसे साँपका जहर नहीं चढ़ेगा। मेरी शपथ देनेसे साँपका विष उतर जायगा। जो साँप मनुष्यका स्वाँग धरे छलसे धनपर बैठे हैं और जो धन निकम्मा पड़ा पड़ा जंग खा रहा है और उनके डरसे जो लोग, बालक, स्त्रियाँ शरीर और लज्जाकी रक्षा तक करनेको तरसती हैं, पर उसमेंसे नहीं ले सकतीं मेरे नामकी दुहाई लेते ही, वे सब काले साँप बन जावेंगे और क्षण भरमें भाग जावेंगे। उस धनसे भूखे अन्न लेंगे, बच्चे दूध लेंगे, रोगी औषध लेंगे, प्यासे जल लेंगे और दुखी सुख लेंगे। इतने पर जो शेष बचेगा वह मेरी दिवंगत आत्माका होगा। विद्वान् लोग मेरी आत्माकी शान्तिके लिये प्रतिवर्ष भाद्रपद वदी चौथको उस धनपर एक, दो, तीन, चार, दस, बीस, पचास, सौ, हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब असंख्य जूते लगावेंगे! अहाहा! कब होगा मेरा वह ताण्डव नृत्य! वह युद्धका यौवन फूटा पड़ता है। हूँ—हूँ—वह मारा!! हूँ। हूँ!

निराशा ।

हाथ पैर मारना और खून सुखाना व्यर्थ है। न इससे कुछ हुआ, न होगा। जब मैं ऐसे चहरोंका ध्यान करता हूँ जिन्हें धनमें धन, रूपमें रूप, प्यारमें प्यार, सुखमें सुख, विद्यामें विद्या और मानमें मान मिला हुआ है तब मुझे फुर्सत भी नहीं मिलती। और जब मैं उन मुखोंका ध्यान करता हूँ जो कहीं कुछ न पाकर झुक गये हैं तो तबियत ऊब जाती है। किसे देखूँ? अपने देखनेसे फुर्सत मिले तब न?

दुनिया ऐसी ही जगह है। यहाँ समतल स्थान बहुत कम हैं—प्रायः हैं ही नहीं। विशेष कर मुझे तो खोजे मिले नहीं हैं—कहीं होंगे। मैं जहाँ खड़ा हूँ, वह एक बड़ी ही विकट पहाड़ी है। मेरे पैर जहाँ टिक रहे हैं, वह बहुत ही सकड़ी पगडंडी है। उसके एक तरफ अतल पाताल है और दूसरी तरफ ढालू गगनभेदी चट्टान है। दोनों ही—चट्टान भी आर पाताल भी—मेरे ही जैसे जीवोंसे भर रही हैं। मुझमें और उनमें अन्तर इतना ही है कि नीचेवाले नीचे हैं और ऊपरवाले ऊँचे हैं। पर नीचेवाले ऊपर न आना चाहें और ऊपरवाले नीचे न आना चाहें तो यह अन्तर कुछ भी नहीं रहता।

यह समझना कठिन है कि सुखी कौन है। पर मेरी इच्छा ऊपर ही जानेकी थी, इससे मैं समझता हूँ ऊपर जानेमें सुख है। ऊपर जा पहुँचनेमें क्या है? सुख है भी या नहीं; इसकी बाबत कुछ भी नहीं कह सकता। पर शायद सुख नहीं है। इसके प्रमाणमें मैं यदि कहता हूँ कि मैं भी कुछसे ऊँचा हूँ, पर मुझे सुख कहाँ है? जो मुझ तक आना चाहते हैं, वे मुझ तक पहुँचनेमें भले ही सुख समझें, पर मुझे सुखी समझना उनकी भूल है। फिर भी वहाँ पहुँचनेमें भी सुख समझा था, यही बड़ी बात थी। सुखकी एक राह तो मिल गई थी। यही क्या कुछ कम था। पर अब तो यहीं, इसी अधबीचमें, इसी तंग पगडंडीमें, डेरा डालना पड़ा। अब बाकी समयका कोई समय-विभाग नहीं है। काम सब खतम होगया है—नहीं नहीं उससे मैंने इस्तीफा दे दिया है। यह देखो, ऊपरवाले ऊपर जा रहे हैं और नीचेवाले ऊपर आ रहे हैं। कहाँ? काम तो कहीं भी खतम नहीं हुआ है? तब सबसे उपराम होकर, सबको काम करता देखकर कैसे नींद आवेगी? विश्रान्ति कहाँ मिलेगी? दिन कैसे कटेंगे? मरनेके तो अभी बहुत दिन हैं।

हाँ, पर अब गोड़े नहीं उठते। कमर टूट गई है, दिल बैठ गया है, रक्त ठण्डा पड़ गया है। इतना करके कुछ न पाया, आगे क्या पावेंगे? कुछ नहीं। सब मृगतृष्णा है—मृगतृष्णा। इस ऊँचाईका कुछ अन्त तो है नहीं, ठेठ तक वही पगडंडी गई है। यही तंग पगडंडी जब तक चोटीपर न पहुँचे और दस हाथ चढ़नेपर भी यही पगडंडी, यही एक तरफ ऊँचा पहाड़, यही एक तरफ अतल पाताल—सब वही है। आर चोटी? चोटीका नाम न लो, वहाँ नहीं पहुँचा जायगा। हरगिज नहीं पहुँचा जायगा। आ मन! सन्तोषसे यहीं बैठ।

आशा।

आशा ! आशा ! अरी भलीमानस। जरा ठहर तो सही, सुन तो सही, कहाँ खींचे लिये जा रही है? इतनी तेजीसे, इतने जोरसे? आखिर सुनूँ तो कि पड़ाव कितनी दूर है? मंजिल कहाँ है? ओर छोर किधर है? कहीं कुछ भी तो नहीं दीखता! क्या अन्धेर है! छोड़, मुझे छोड़। इस उच्चाकांक्षासे मैं बाज आया। पड़ा रहने—मरने दे, अब और दौड़ा नहीं जाता। ना—ना—अब दम नहीं रहा। यह देखो यह हड्डी टूट गई, पैर चूर चूर हो गये, साँस रुक गया, दम फूल गया। क्या मार ही डालेगी सत्यानाशिनी? किस सब्ज

बागका झाँसा दिया था? किस मृगतृष्णामें ला डाला मायाविनी? छोड़ छोड़, मैं तो यहीं मरा जाता हूँ,—यही समाप्त हो रहा हूँ। मैंने छोड़ा, बाजदावा देता हूँ—मेरी जान छोड़। मैं यहीं पड़ा रहूँगा। भूख और प्यास सब मंजूर है। हाय! वह कैसी कुघड़ी थी जब मैं प्यारी शान्तिका हाथ छोड़, उससे पल्ला छुड़ा, उसे धक्का मार, अन्धेकी तरह—नहीं नहीं पागलकी तरह—तेरे पीछे भागा था? कैसी भंग खाली थी, कैसी कुपत गवाँई थी? कहाँ है मेरी शान्ति? कुछ भी तो पता नहीं है—जीती भी है या मर गई!

क्या करता। तेरी मोह भरी चितवन, उन्मादक मुस्कुराहट, और दिलको लोट पोट करनेवाली चपलताने मुझे मार डाला। मुझपर, मेरे दिलपर, मेरी शान्तिपर, इन सबने डाका डाला। शान्ति छुटी, सुख छुटा, घर बार छुटा, आराम छुटा, अब भी दौड़ बन्द नहीं? अब भी मंजिल पूरी नहीं? तैंने कहा था, वहाँ एक करोड़ स्वर्गोंका निचोड़ा हुआ रस सड़कोंपर छिड़का जाता है। तैंने कहा था, शान्तियोंका वहाँ ढलाईका कारखाना खुला हुआ है। तैंने कहा था, सुखके सात समुद्र भरे पड़े हैं। तैंने कहा था, रूपका वहाँ अतर खींचा रखा है। तेरे इतने प्रलोभनोंमें यदि मैं भटक गया तो भगवान् मेरा अपराध क्षमा करें। यहाँ तो मार्ग ही मार्ग है—मंजिलका कहीं ठिकाना नहीं है। क्या जाने कहीं है भी या नहीं।

प्यासके मारे कण्ठ चिपक गया है। जीभ तालूसे सट गई है। घरमें कूएका ठण्डा जल था, उसे छोड़ अमृतके लोभमें निकला, तो प्यास पल्ले पड़ी। घरमें पेटभर रोटियाँ तो थीं—जैसी भी थीं—मोहन भोगके लोभमें गधेकी तरह वे छोड़ दीं, अब भूखके मारे आँखें निकल

रहीं हैं। चटाईका बिछौना क्या बुरा था? सिंहासन कहाँ है? यहाँ चलते चलते पैर टूट गये हैं। वह बीहड़ मैदान, रेगिस्तान, नदी नद, तालाब झील, जंगल, बन, नगर, पहाड़, गुफा खोह, ऊबड़ खाबड़—ओफ बराबर तय किये आ रहा हूँ। अभी और भी तेरी उँगली उठ रही है। तेरी तेजी बराबर जारी है। तू नहीं थकी? पसीना भी नहीं आया? होश हवाश बराबर कायम हैं? भीषणा सुन्दरी! तू कौन है? वही आगेको ऊँगली उठा रही है। 'थोड़ी दूर और है' यही तेरा मन्त्र है। बढ़ी चली जा रही है आँधी और तूफानकी तरह। छोड़ दे, मेरी उँगली-को छोड़ दे, नहीं तो मैं उँगली काट डालूँगा। थोड़ी दूर हो या बहुत दूर हो, बस मुझसे नहीं चला जाता। घुटने छिल गये, बाल पक गये। पेट कमरमें लग गया। कमर धरतीपर झुक गई। अब भी दया नहीं—अब भी आराम नहीं। रहने दे, मैं यहीं आराम करूँगा—यहीं गिरूँगा, यही मरूँगा—जा—छोड़ छोड़।

लौट ही जाता। शायद शान्ति मिल जाती। पर! पर! पर! लौटनेका ठिकाना किधर है और आ किधरसे रहा हूँ—कुछ भी तो नहीं मालूम। दौड़ा दौड़ आ रहा हूँ—इधर देखा न उधर। आजसे आ रहा हूँ। जन्म समाप्त हो चला। सारा समय मार्गमें ही बीत गया—फिर भी कहती है—'थोड़ा और।' लौटने दे। पर लौटनेका समय कहाँ है? घर बहुत दूर है। उसकी राह जवानीसे बुढ़ापे तककी है। अब बूढ़ा तो हो गया—जवानी अब कहाँसे आवेगी? अब लौटना व्यर्थ है। असम्भव है। तब? तब क्या यहीं मरना होगा? यहीं मार्गमें, काँटे और पत्थरोंसे भरी धरतीमें, हिंसक जन्तुओंसे भरे जंगलमें? हे भगवान्, जवानीसे बुढ़ापे तक, दौड़ने—मरने—सब कुछ त्यागनेका—यही—यही—यही फल मिला? हाय!

फिर वही, " थोडी दूर और "। यह थोड़ी दूर कितनी है ? सच तो बता, ईश्वरकी कसम। अब तो वापस लौटनेका समय ही नहीं है। प्रकाशका एक कण भी तो नहीं दीखता। तेरी आँखें मात्र चमकती हैं। इन आँखोंके प्रकाशमें और कबतक चलूँ ? ना-ना—अब दम नहीं है। मैं हाथ जोडूँ, हा हा खाऊँ, मुझे छोड़ दे। मरनेको छोड़ दे। मुझे न सुखकी हौंस है न जीनेकी।

क्या कहा ? मजिल आगई ? कहाँ ? किधर ? देखूँ ? इतना क्यों हँसती है। मुझे हँसना अच्छा नहीं लगता। ठहर। क्या सचमुच मंजिल आगई ? यह जो तारा सामने चमक रहा है—वही क्या हमारा गन्तव्य स्थान है ? पर वह तो अभी दूर है। वहाँ तक पहुँचनेकी ताब कहाँ है ? और पहुँच कर वह भोग भोगनेकी शक्ति भी कहाँ रह गई ? रहने दे। अब एक पग भी न चलूँगा। चला भी न जायगा। इसका कोई उपयोग नहीं। पहुँचना ही कठिन है और पहुँचकर उसका उपभोग करना तो और भी कठिन—असम्भव है। भोगका समय, आयु, शक्ति, सब इस मार्गमें समाप्त हो गई। अब क्या उस भोगको लालचकी दृष्टिसे—तरसते मनसे—देखनेको वहाँ जाऊँ ? यह तो और भी कटु होगा। रहने दे, अब वहाँ जानेका कुछ आकर्षण नहीं रहा। तुम अक्षययौवना हो, किसी अक्षययौवनको पकड़ो। और मैं तो यहीं इसी मार्गमें मरा ! हे भगवान ! आज शान्ति मिलती ! आशा ! आशा ! तुम जाओ—जाओ ! हाय ! मैं मरा ! एँ ! एँ ! क्या कहा ? वहाँ सब थकान व्याधि मिट जायगी ? शान्ति भी मिल जायगी ? नहीं ? ऐसा ! अच्छा भगवान ! चल। अच्छा चल। पर कितनी दूर है ? है तो सामने ही न ? अच्छा और चार पग सही—चल—चल।

घृणा।

हटाओ! हटाओ। उसे मेरे सामनेसे हटाओ। ना। मैं उसे दण्ड नहीं दूँगा। भगवान् उसे देखेंगे। उसके योग्य कोई दण्ड नहीं है। यह काम मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है। यह मेरा अन्त समय है। जहाँ जाता हूँ वहाँ शायद भगवान् मिलें। उसका नाम मत लो। मुझे जरा सुखसे मरने दो। उसकी बात मत करो। नीच, स्वार्थी, झूठा, विश्वास-घाती, कमीना। उफ मुझे भुला दो—किसी तरह उसका नाम भुला दो। आगके अंगारेकी तरह वह छाती पर धरा है। घृणित कुत्ता, खून पीनेवाला पिस्सू, डरपोक खटमल। हट मर—मैंने तुझे छोड़ा, भग-वानके नाम पर छोड़ा। लेकर रह, उसे लेकर रह पापिष्ठ! हाय! उसीकी याद आती है। उस यादमें सड़ी बास आती है। दिमाग फटा जाता है। संडासकी मूर्ति, पापकी प्रतिमा, विश्वासघातकी स्याही, विष्टाके कीड़े, ये सब तेरे रूप हैं। धूर्त! बुजदिल! निकम्मे!!

मेरी सरला वधू गाँवकी गँवारी थी। सीधी साधी। आज वह कहाँ है? वह घासका सफेद फूल मसलकर किस मोरीमें डाल दिया है? कितनी चाहसे मैं उसे लाया था। समझा था, वह मेरी है। उसने भी कहा था—मेरी है। तू कौन था? उच्छिष्टभोजी कौवे? काने! काले! तू कहाँसे देखता था? देखते देखते ही ले भागा! तुझे मार डालूँ, यह सम्भव है, पर तेरे खूनके हाथ कहाँ धोऊँगा? यह घृणित खून?

कोढ़के कीड़ोंसे गिजमिजाता खून ? ना, मैं तुझे नहीं मारूँगा, तुझे नहीं छुऊँगा। चल हट सामनेसे। आँखोंमें क्यों गढ़ा है ? अरे ! निकल ! नीच ! अपदार्थ ! मर, मुझे छोड़। हवाका रुख छोड़ दे। तुझे छूकर जो हवा आ रही है उसमें साँस लेनेसे मेरा दम घुटता है।

तेरा दिल पुरानी हड्डीसे भी अधिक सूखा है और खून मुर्देसे भी अधिक ठण्डा है। इस तरह मरे बैलकी तरह क्यों आँखें निकालता है ? क्या मुझे खायगा ? मेरा खून पीयेगा ? वह तो तेरे सर्वनाशकी चिन्तामें सूख गया ! उसमें क्या स्वाद है ?

जा पापी ! अब मैं मरा जाता हूँ, मरेको खा जाना। हलकसे उगलन निकाल कर खानेवाले श्वान ! मुर्दारभोजी गीदड़ ! जरा ठहर जा।

जा सुखके श्मशान पर मौज कर, प्रेमकी लाशका रस पी। तृप्त हो जायगा। इसलोक और परलोकका सब कुछ तुझे मिल जायगा। चल भाग यहाँसे। दूर हो—दुर—दुर—दुर। हटाओ, हटाओ, दूर ले जाओ। दुनियाकी आँखोंसे दूर ले जाओ। धरती आस्मानसे दूर ले जाओ। जो इसे देखेगा, अन्धा हो जायगा। जो इसे छुएगा कोढ़ी हो जायगा। जो इसके पाससे हो कर निकलेगा सड़ जायगा। जिसे इसकी हवा लगेगी, कीड़ा बन जायगा। इसे गाड़ दो, धरतीमें गाड़ दो, या मिट्टीका तेल डाल कर दीवासलाई दिखा दो। नहीं तो नदीमें फेंक दो। देखना, चीमटेसे पकड़ना। दाँत तोड़ देना, आँख फोड़ देना, पैर काट डालना। सावधान रहना। ओफ ! आँख ओझल हुआ। झगड़ा कटा। मगर भीतर है। अभी है ? वही है। हे भगवान् ! हे नाथ ! इसे भुला दो, मुझे बुला लो। यहाँ यह नहीं छोड़ेगा। हाय ! देखो किस तरह घूरता है ! मैं मरा, हाय ! हाय ! छूना मत—छूना मत ! ओफ!!!

भय।

हैं ! यह खड़का कैसा ! कौन ? इसे भी खोदकर यहीं गाड़ दूँगा। ओह ! कुछ नहीं। मैं यों ही डर गया—हवासे पत्ता खड़क गया था। अब यह क्या ? कोई है ? नहीं, कोई नहीं। यहाँ कौन आयगा ? इस बीहड़ वनमें ? इस भयंकर जंगलमें ? इस सन्नाटेकी रातमें ! इस चिल्लेकी सर्दीमें....। लोहू जम गया है, होठ सीं गये हैं, जीभ तालूसे सट गई है। कैसा अँधेरा है ! बापरे ! यह क्या चम-कता है ? हो ! किसने छुआ ? यह ठण्डा हाथ किसका है ? भागूँ ? किधर ? पगडंडी किधर है ? अब वह कौन बोला ? ओह ! कोई पक्षी है। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ—अपने ही पदशब्दसे चौंकता हूँ, अपनी ही छायासे डरता हूँ, अपने ही स्पर्शसे काँपता हूँ। काम जल्दी खतम करना चाहिये। अच्छा अब खोदूँ। कुदाल कितना भारी है। जमीन

लोहे सी हो रही है। जरा सी चोटमें कितना शब्द होता है। कहीं यह चिल्ला न उठे। जब मर ही गया है तब क्या चिल्लायगा? उस वक्त ही नहीं चिल्लाने दिया—एक शब्द तो निकलने दिया ही नहीं। कैसा छटपटाया था, कितने हाथ पैर मारे थे, कितना जोर लगाया था, पर अन्तमें ठण्डा हो गया। आँखें बाहर निकल पड़ी थीं, जीभ हलकसे लटक गई थी, गलेकी नसें फूल गई थीं, दो मिनिटमें दम उलट दिया। ना—ना। वह बात याद न करूँगा। कोई, सुन न ले। गला क्यों कस गया? दम घुटता है। ठहरो, कुर्तेको फाड़ डालूँ। हाथ क्या गीले हैं? ऐं? खून! खून! चुप! चिल्लाता क्यों हूँ? अंधेरेमें कौन देखता है! धो लेने पर साफ! अरे! क्या वह उठता है? तू कौन? भूत कि पिशाच? तुझे भी मार डालूँगा। अब यह पल्ला किसने खींचा? पीछे कोई है क्या? पीछे फिर कर देखूँ? कोई मार न दे! मुझे क्या कोई पकड़ लेगा? सबूत? सबूत क्या है! फाँसी? मुझे? किस सबूतसे? गवाह कौन है? यही बोलेगा क्या? मुर्दा! यह? ठहरो इसे दुबारा मारे देता हूँ। यह क्या! पसीना आ रहा है! भागूँ? पैरोंमें पारा चढ़ गया? भागूँ? और यह? यों ही रहेगा? पड़ा रहे? कौन देखता है? कौन जानता है? कौन कहता है? सबूत क्या है? यह कौन हँसा? इतनी जोरसे? कौन? कोई नहीं। भागूं? अच्छा भागता हूँ। पड़ा रहने दो, सबूत क्या है? इसीके कपड़ोंसे हाथ पोंछ दूँ। पानी है क्या? वह नहीं है! अच्छा भागता हूँ! ऐं! पी—पी—पी—छे कौन—कौन है! यह गिरा! बचाओ—बचाओ! दौड़ो—दौड़ो! फाँसी—न—न—नहीं—मैं नहीं। सबूत! नहीं मैं नहीं—बापरे! फाँसी! फ—फ—फ—फाँसी! मरा! मरा—म—मरा—हाय!!!

गर्व।

वह ? उसकी यह मजाल! अच्छी बात है देख लूँगा! मेंडकीको जुकाम हुआ? मेरी बराबरी करेगा ? बराबरी कहाँ? आगे बढ़ेगा? वह भुनगा ? कलतक जो मेरे द्वार पर जूतियाँ चटख़ाता फिरता था! जिसकी माके हाथोंमें चक्की पीसते पीसते आँटे पड़ गये हैं, आज वह यों चलेगा ? अकड़ कर, इस ठाठसे ? कुचल डालूँगा। दूधसे मक्खीकी तरह निकाल फेंकूँगा । वह अपने हिमायतियोंको लेकर आवे, एक एकसे सुलझ लूँगा।

मुझे नहीं जानता। ऐसे ऐसे अंटियोंमें अटके फिरते हैं। बड़े बड़े 'तीस मारखाँ' देखे हैं। सब साले दूनकी हाँकते थे, पर अन्तमें सबका सिर नीचा हुआ। यही मैं सबसे ऊँचा हुआ। इन्हीं हाथोंसे यह सम्मान, यह धाक, यह जलाल पैदा किया। किसीको क्या समझता हूँ! लखपती होंगे तो अपने घरके। दिखा दूँगा। यही नाक न रगड़े तो नाम नहीं, 'भंगीका पिशाब' कह देना!

लड़ लो, चाहे जिस तरह लड़ लो। धनमें, बलमें, विद्यामें, खर्चमें। चार कौड़ी क्या हुई सालोंके सींग निकल आये। धरती पर पैर नहीं टेकते। कुछ परवा नहीं। ईंटसे ईंट बजा दूँगा। या मैं नहीं या वह नहीं। मैं हूँ मैं! किसकी मजाल है! किसकी माने धौंसा खाया है, किसकी छाती पर बाल हैं? पिशाबमें मूँछ मुड़वा दूँगा। डाढ़ीका बाल बाल उखड़वा लूँगा। वह मैं हूँ! मेरा नाम क्या साले जानते नही हैं? किसने मुझे अबतक नीचा दिखाया ? जो उठा वहीं खटमलकी तरह मसल दिया! दम क्या है? किस बूतेपर

उछलते हैं। साले पतंगे हैं—पतंगे। बे मौत मरते हैं। किसीने सच कहा है—"चिउँटीके जब पर भये, मौत गई नियराय।" यहाँ तो मेरी चलेगी—मेरी। आया समझके बीचमें? मेरी चलेगी। मेरी ही मूँछें ऊँची उठेंगी। यह सारी सम्पदा मैंने अपने भुजबलसे पैदा की है। कितनोंको मैं रिजक देता हूँ। कितने मेरा टुकड़ा खाते हैं। कितने मेरे हाथसे पलते हैं। किसीको तौफीक है? ऐसा कोई है? बादशाहोंकी पूँछमें क्या सुर्खाबके पर लगे रहते हैं? मैं किस बातमें कम हूँ? जहाँ जाता हूँ लोग झुक कर सलाम करते हैं और जानेकी जरूरत भी नहीं पड़ती, लोग यहीं सलाम करने आते हैं। मेला लगा रहता है। मैं किस सालेके दरवाजे जाऊँगा? इन्हींको रोटियाँ लगीं हैं, सो जहरके सारे दाँत तोड़े देता हूँ। देखो मेरे हतकंडे।

लोग कहते हैं भगवान्से डर। बेबकूफ इसी डर ही डरमें भुड़क्ख बने बैठे हैं! छोटे बड़े सब तरहके काम किये, आज तक तो भगवानने हाथ पकड़ा नहीं! तेरी भक्तिकी दुममें रस्सा। वे आते हैं पंडितजी, पूरे बेगैरत, बिना पूछे सौ सौ असीसें देते हैं। चहरा ऐसा जैसे अभी रो पड़ेंगे। शरीर ऐसा जैसे कब्रसे उठ कर आये हैं। कौड़ीको दाँतसे उठाते हैं। ये हैं भगवानके भगत! उल्लूके पट्ठे, हरामी, खाते हैं मेरा, कहते हैं भगवानका। अच्छा सब मौकूफ। इन निकम्मोंको आजसे कौड़ी न दी जाय। भगवान्से माँगें! उनका भगवान् देखें कैसे खिलाता है। कहीं भगवान् न भगवानकी दुम। पद्दूका पद्मसिंह बना रखा है! हम हैं भगवान्! यह रुपया है हमारा सुदर्शनचक्र। यह दस्तावेज है हमारी गदा। और यह हमारी कृपा है पद्म और आशा है शंख। हमें भजो, हमें झुको, हम देंगे। हम देंगे—हम—हम—हम। इधर देखो हम! हम! हम!

अशान्ति ।

नस नसमें रोगोंने घर कर लिया है। दवाइयोंके जहरसे कलेजा जला पड़ा है। सिरमें विचारोंकी रुई धुनी जा रही है। कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? पलँग पर पड़े पड़े हड्डियाँ दुखने लगीं। गद्दे काटते हैं। रात भर नींद नहीं आती। इतने खटमल कहाँसे आगये ! प्राण निकलें तो पिण्ड छुटे। पर प्राण अभी निकलेंगे नहीं। कितनी साँसत भुगतनी है हे भगवान्, आगे क्या होगा ? पीछे क्या होगा ? कुछ भी तो नहीं सूझता ! जबसे होश सँभाला, जी तोड़ कर कमाया। सारी जवानी परिश्रमके पसीनेमें लतपत पड़ी है। रात देखा न दिन। मान देखा न अपमान। सुख देखा न दुःख —धर्म देखा न अधर्म। जो सामने आया, सब किया। धन मिला भी। उसे भोगा भी, पर भोगा नहीं गया। जीवनके रसमें बुढ़ापेकी किरकिरी मिल गई। इस पुराने चिरागका सब तेल चीकट बन गया। भोगनेकी हौंस भोगोंको ढोते ढोते ही मर गई। रसोई बनाते बनाते ही भूख मर गई।

चौथे ब्याहकी जवान स्त्री है। उसे जब ब्याहा था, ब्याहके पहले देखा था। हर्षके मारे लोहू नाच उठा था। देखते देखते पेट ही।

नहीं भरता था। पर आज उससे डरता हूँ। उसकी वह कटोरीसी आँखें भूखेकी तरह मेरी ओर घूरा करती हैं। जब तक वह घूरती है भूल कर भी नहीं हँसती। होठ फड़कते हैं, पर मुस्कुराते नहीं। मैंने उसका क्या बिगाड़ा है? मुझ पर इतनी विष-वर्षा क्यों? धन, घर, ऐश्वर्य सब कुछ मैंने उसे दिया। यह कहाँ मिलता? गरीब गाँवकी लड़की थी। ये महल, ये ठाठ, ये दासी-दास कहीं देखे थे? पर ये सब मानों तुच्छ हैं? और क्या चाहती है? मंगलको देखते ही हँसती है, घुल घुल कर उसीसे बोलती है—जैसे वह उसका सगा हो! घबराता हूँ। इज्जत आबरू, बड़प्पन सब कच्चे धागेमें बँधे लटक रहे हैं। और वह कच्चा धागा उसीके हाथमें है। एक ठोकरमें सब खतम हो जायगा—सिर्फ एक ठोकरमें। जब तक हूँ दोनों हाथोंसे पगड़ी पकड़े बैठा हूँ। जमाना नाजुक है। पर मेरे पीछे क्या होगा? हे भगवान्! यह सब किस मायाजालमें फाँसा? पर किसीका क्या अपराध है! सब फन्दे तो अपने ही हाथमें बनाये थे!

जिस सन्तानकी लालसा पर चार चार बालिकाओंका कौमार भ्रष्ट किया, वह आज तक नहीं मिली। जिनके पास रहनेको जगह नहीं, खानेको अन्न नहीं, उनके घरमें दर्जनों बालक होते हैं। मैंने सब कुछ संग्रह किया, सब कुछ है, पर इन्हें सुखसे भोगनेवाला कोई नहीं है। वर्षों तक रात रात भर जाग कर, झूठ सच बोलकर, न जाने कितनोंका अधिकार छीन कर, कितनोंको नीचे गिराकर, यह तिमंजिला 'मरा हाथी' खड़ा किया है, जिसमें मेरे पीछे दिया जलानेवाला भी कोई नहीं है। हाय करम! लोग रोते हैं कि धन नहीं, धन कैसे मिले? मैं रोता हूँ, इस धनको, इस जवान सुन्दरी स्त्रीको कहाँ रखूँ? किसके सिर मारूँ?: कहाँ नष्ट करूँ? कोई ठौर नहीं! हाय राम!

जैसे बनता है मनको मारता हूँ, क्रोधको दबाता हूँ, सज्जनताका व्यवहार रखता हूँ; पर फिर भी सब व्यर्थ होता है। कोई सुजनतासे नहीं पेश आता। नौकर लोग आँख देखते चोरी करते हैं और फटकारनेपर मुँह भींच कर हँस देते हैं। सब बे अदब हैं। मुनीम गुमाश्ते पीठ पीछे खिल्ली उड़ाते हैं। कोई नहीं सुनता—इस कान सुन कर उस कान उड़ाते हैं। सबको जानता हूँ। किसीके हृदयमें आदर नहीं, भक्ति नहीं, ममता नहीं। सभी मतलब गाँठ रहे हैं। मैं बूढ़ा क्या खाक हुआ? धनी मालिक बनकर क्या ऐसी तैसी मराई? सुख नहीं था, शान्ति नहीं थी, इज्जत तो मिलती! बाहर न सही, अपने ही घरमें सही।

कर्जदार दिवालिये हो गये? विना अदालत गये चलेगा नहीं। किसकी फिक्र करूँ? दो विधवा बहनें छातीपर थीं, अब भतीजी भी आगई। आठको साठ करते कितने दिन लगेंगे? बापपनेका सुख तो नहीं, दुख मिला। घरमें बरात चढ़ी चली आरही है। लोग सैकड़ों रिश्ते निकाल लाते हैं। चचा, ताऊ, साला, सालेका साला, धेवतीके नवासेका जमाई—सब हाजिर हैं। जानेका नाम नहीं लेते। सब खा रहे हैं, बिगो रहे हैं। घर लुट रहा है। कुछ प्रबन्ध नहीं। कुछ इन्तजाम नहीं। क्या करूँ? रात करवटें लेते बीतती है और दिन चिन्ता करते। खाने बैठता हूँ तो भोजन मुझीको खाये जाता है। घरमें सब कुछ है, पर मेरे लिये मिट्टी है। किसीमें मजा नहीं। क्या होगा? कैसे दिन कटेंगे? क्या संखिया खाऊँ? कैसे पार पड़ेगी? हे भगवान्! हे नाथ! हे दयाधाम! तुम्हीं खिवैया हो! तुम्ही पार लगानेवाले हो! तुम्हारे ही आसरे सब कुछ है। हे भगवान्! हाय राम! हरे! हरे!

कर्मयोग ।

क्या आँख फोड़ देनेसे देखनेकी हौंस मिट जायगी ? बाँध कर नदीसे दूर डाल देनेसे क्या पीनेकी इच्छा ही नहीं रहेगी ? वासनाकी वस्तुको त्याग कर वनवासी होनेसे क्या वासनासे पिण्ड छुट जायगा ? बेवकूफ हूँ । विरक्ति किससे ? क्या संसारसे ? अच्छा, संसार छोड़ कर कहाँ जाऊँ ? घर छोड़ कर वनमें जा सकता हूँ, पर इसीसे क्या संसार छूट गया ? घर ही संसार है क्या ? कैसी बे समझी है । " दिल रंगा नहीं उस रंगमें, क्या है कपड़े रंगनेमें ।" सच बात है । क्रोध, काम, लोभ, मोह मनमें बसे हैं । इन्द्रियोंको उनका चसका लग रहा है । तब वन जानेसे इतना होगा कि यहाँ मनुष्योंसे द्वेष और लड़ाई है—वहाँ शेर चीतोंसे होगी । यहाँ मनुष्योंसे प्रेम है, वहाँ पशुपक्षियोंसे होगा । वाहरे भ्रम ! क्या मैं सिंहको देख कर डरसे चिल्ला न उठूँगा ? साँपको देखकर क्या मैं उसे अपने बच्चोंकी तरह छातीसे लगा सकता हूँ ? भेड़ियेको पास बैठा कर क्या अपने साथ आदरसे भोजन करा सकता हूँ ? नहीं । तो सिर्फ कपड़े रंगकर वनवासी होनेसे क्या होगा ? मैं यदि अपनी स्त्री, पुत्र, परिजन और बान्धवोंसे प्रेम नहीं कर सका, तो अखिल विश्वपर—समस्त विश्वके स्वामीपर—कैसे प्रेम कर सकूंगा ? सब विडम्बना है, छल है, आत्म-प्रतारणा है । सुन्दर प्रशस्त कर्मक्षेत्र घर है । कायर घरसे डर कर वनको भागते हैं । घर तीव्र शस्त्र है । बुद्धिमान् और वीर उसे लेकर संसारको विजय करते हैं । मूर्ख कायर उसकी तेजधारसे जख्म खा

बैठते हैं। जिस प्रकार चतुर वैद्य तीव्रसे तीव्र विषको रसायन बना कर रोगीको सेवन कराकर जीवनदान देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे भयंकर विषोंको रसायन बना कर जीवनको सफल करते हैं। रूप क्या विष है? प्रेम क्या बिच्छू है? धन क्या सर्प है? बाँधव क्या सिंह हैं? अभागे लोग इनका कितने अविचारसे त्याग कर देते हैं। भूल है--भूल है—भ्रम है। ज्ञानकी प्रथम गुरु माता है। कर्मका प्रथम गुरु पिता है। प्रेमका प्रथम गुरु स्त्री है और कर्तव्यका प्रथम गुरु सन्तान है। व्यवहारका गुरु परिजन है। धर्मके गुरु पड़ौसी हैं। आचारके गुरु मित्र हैं। इस गुरुमण्डलीका अपमान करके अभागा पुरुष कहाँ जाता है? मैं घरमें रहूँगा। मैं विरक्त न बनूँगा। मैं कर्मयोगकी दीक्षा लूँगा। मेरी समझमें सब आगया—अच्छी तरह आगया। जैसे कमलका पत्ता पानीमें रह कर, पानीमें उत्पन्न होकर, पानीसे अलग रहता है, मैं भी मायामें रह कर मायासे अलिप्त रहूँगा। जैसे सूर्य पृथ्वीके रसको आकर्षण करके संसार पर वर्षा करता है, वैसे ही मैं धन, धर्म, धान्य, जन, सबको आकर्षण करूँगा और पुनः विसर्जन करूँगा। न मेरा है, न मेरा होगा, न मेरा किसी पर दावा है। मैं स्वामी नहीं हूँ। इतनी भूल थी, आज उसे सुधारे देता हूँ। मैं सबका हूँ। इनसे अलग हो ही नहीं सकता। मैं बन्दी हूँ। मुझे स्वतन्त्र होनेका अधिकार नहीं है। मैं स्वतन्त्र नहीं होऊँगा। मैं करूँगा, पर अपने लिये नहीं। लाभ हो या हानि। मुझे हर्ष न विषाद। जिसका बने बिगड़े उसका बने बिगड़े। मैं क्या मालिक हूँ। मुझे फलकी न चाह—न खबर। मैं बन्दी हूँ। करूँगा, माँगूँगा नहीं। और कुछ माँगूँगा नहीं। मैं बन्दी हूँ।

दया।

यह मेरी अन्तरात्माकी पवित्र आज्ञा है। यह मेरे हृदयका शृंगार है। इसकी स्मृतिसे मनमें प्राण संजीवन होता है। मैं यह कार्य करूँगा। यह सच है कि वह मेरा कोई नहीं। वह पापी पतित है। उस पर सभीका कोप है। हाय! भगवानूका भी कोप है। कुछ उस पर क्रोध करते हैं, कुछ दुरदुराते हैं, कुछ घृणा करते हैं और कुछ अविश्वास करते हैं। इतना सहकर वह कैसे जी सकेगा? इससे तो अच्छा यही है कि उसे लोग मार डालें। जिसे ठिकाना नहीं, आश्रय नहीं, उत्तेजन नहीं, प्रेम नहीं, आदर नहीं, वह इस पृथ्वी पर स्वार्थ-की हवामें कितने दिन साँस ले सकेगा? चाहे जो कुछ भी हो। लोग चाहे मुझसे रूठ जायँ, पर मैं उसे अवश्य प्यार करूँगा। यह मेरी अन्तरात्माकी पवित्र आज्ञा है। यह मेरे हृदयका शृंगार है। इस-की स्मृतिसे मनमें प्राण संजीवन होता है। मैं यह कार्य करूँगा।

वह नीच है, अछूत है, मलिन है, इससे क्या? क्या उस-के शरीरमें वही आत्मा नहीं है जो हमारेमें है? उसके जैसे हाड़ मांस क्या हमारे शरीरमें नहीं हैं? वह ईश्वरका पुत्र है। उसके शरीरका प्रत्येक कण ईश्वरके हाथकी निजू कारीगरी है। ईश्वरने उसे स्वयं बनाया है और आज तक पाला है। बिना उसके वातावरणके क्या वह इतना बड़ा होता? यह बात झूठ है? अब न

सही, पर कभी तो उसने प्यार पाया होगा? क्या कोई ऐसा बच्चा देखा है जिसने माकी छातीसे चिपट कर मधुर दूध न पिया हो? क्या किसीने ऐसा बच्चा देखा है जिसने बापके लाड़ न देखे हों? और इसने क्या बचपनको पार नहीं किया है? आज उसकी यह दशा हुई। प्यारसे गया, सुखसे गया, घृणा क्रोध तिरस्कारकी बौछारोंसे मरा जा रहा है। क्या प्यारकी प्यास इसके मनसे बुझ गई होगी? एक बार जिसने मिश्री खाई है, क्या वह उसके मिठासको भूल सकता है? वही प्यार मैं इसे दूँगा। जैसे प्यासेको पानी पीनेसे उसके प्राण शीतल हो जाते हैं, जैसे अन्न पाकर भूखोंकी आँखोंमें ज्योति आ जाती है, उसी तरह इसे प्यार पाकर सुख मिलेगा। वह मुझे प्यार करेगा। प्यार क्या यों ही मिलता है? कितने मरे, कितने खपे, मैं प्यारको पाऊँगा। गुणों पर प्यार होता है, ठीक है। उसे प्रेम कहते हैं। एक प्यार चाहनाका होता है, उसे मोह कहते हैं। यह प्यार वासनाहीन है, इसमें न गुण देखे जाते हैं न दोष, न नीच न ऊँच, न पाप न पुण्य। केवल दुःख देखा जाता है। चाहे जो हो, चाहे जिस कारणसे दुःखी हो, उसे प्यार करना, इस प्यारका एक प्रकार है। इस प्रकारको कहते हैं दया। भगवान् दयालु हैं। दया भगवानकी नियामक सत्ता है। भगवानके पालनमें दया है, संहारमें भी दया है। यही दया उसे अतुल्य न्यार्य बनाये है। जो न प्यारके, न आदरके, न प्रतिष्ठाके, न कामके पात्र हैं, वे सब दयाके पात्र हैं। अच्छी तरह समझ गया हूँ। देखते ही पहचान लूँगा। छूटते ही दया करूँगा। यह देखो, मनमें कैसा हर्ष उत्पन्न हुआ, आत्मामें कैसा सन्तोष मिला। यह दयाधनका प्रताप है। हे प्रभु! मेरे हृदयमें दयाको स्थायी बना। दया मेरे नेत्रोंमें बसे। दया मेरे पथका प्रकाश हो।

वैराग्य ।

अपने मजेकी खातिर गुल छोड़ ही दिये जब ।
सारी जहाँके गुल्शन मेरे ही बन गये तब ।

सबका फैसला हो गया, सबसे सन्धि हो गई । सब झंझट हट गये । सबको छुट्टी है । इन्द्रियोंको छुट्टी और मनको भी छुट्टी है । आत्मा और मैं, बस दोनों ही रहेंगे । एक खेलेगा, एक देखेगा । सलाहकार और नुकताचीन सब गये । बड़ी सुन्दर व्यवस्था हुई—बड़ी ही सुन्दर । प्राण कैसा स्वच्छन्द हो रहा है ! आहाहाहाहा ! आत्मा प्रकाशित हो रही है । भीतरसे ज्योति निकलती है । मन शान्त बैठा है । अब तक यह सुख कहाँ था ? इसीकी खोजमें बूढ़ा हुआ ! अब मिला है ? वाहरी दुनिया ! वाहरे संसार ! वाहरी माया ! वाहरी चमक ! अच्छा झाँसा दिया, अच्छा भटकाया, अच्छा उल्लू बनाया, अच्छा फन्देमें फँसाया । समय नष्ट गया अलग और बदलेमें मिला ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध, मत्सर ! राम-राम ! भगवान्‌को धन्यवाद है । अन्तमें मार्ग मिला तो । वाह ! कैसा सीधा मार्ग है, कैसी शान्ति है, कैसा सुख है ! कुछ चिन्ता नहीं, किसी बातकी चिन्ता नहीं । भूख लगी है तो लगा करे, हम क्या करें ? मिलेगा तो खा लेंगे । शीत लगता है तो लगा करे, उसके लिये क्या हम चिन्ता करें ? हम ? नहीं, हमसे यह न होगा । हम किसीके लिये कुछ न करेंगे । हम तो बादशाह हैं ।

अरे भोले भाइयो ! यह सब क्या लाये हो ? हम इसका क्या करेंगे ? क्या कहा ? सम्मानार्थ लाये हो ? हो हो हो ! हमें सम्मानका क्या करना है ? ना, हम न लेंगे । हम क्या भिखारी हैं ? हम बादशाह हैं । तुम्हें लेना हो तो इससे लो । तुम हीन दीन, दुखिया लोगो ! हाय ! कैसे अभागे हो—कामक्रोध चिन्ताके ऋणी, लोभ मोहके दास, तुच्छ प्राणी ! आओ, इधर आओ । यहाँ शान्ति है । इधर देखो । अपनी ओर देखो, अपने भीतरकी ओर देखो । कुछ मिलेगा ? भटक रहे हो, तरस रहे हो, तड़प रहे हो, अरे अबोध जनो ! किस लिये मिथ्या मायामें फँस गये हो ? भ्रममें भटक रहे हो ? तन, मन और शान्तिको नष्ट करके कमानेमें लग रहे हो ? इतना रुपया क्या करोगे ? इतना क्या खा सकते हो ? इतने बड़े महल क्यों बनाये हैं ? पागल हो ! मूर्ख हो ! तस्मेके लिये भैंस हलाल करते हो ? राईकी प्राप्तिको पहाड़ परिश्रम करते हो ? तुम्हें सुख कैसे मिलेगा ? तुम्हारा कल्याण कैसे होगा ? ईश्वर जानता है, तुम भटक रहे हो ! जो मनुष्य परिश्रम तो करे ढेर और प्राप्त करे मुट्ठी भर, वह क्या बुद्धिमान् है ? यह मत समझो कि जो कमाते हो वह तुम्हारा है । इसी फेरमें मरे हो ! तुम उसमेंसे भोग कितना सकते हो ? वही तुम्हारा है, बल्कि उसमेंसे भी कुछ अंश । यह सब त्यागो, इन्द्रियोंकी लगाम छोड़ दो, मनको बर्खास्त कर दो, आत्माकी उपासना करो, अपने आपको देखो—भीतर ही भीतर । इतना क्यों दौड़ धूप करते हो ? व्यर्थ थकते हो । जो है यही है । कस्तूरीमृगकी तरह भटको मत । भगवान् तुम्हारा कल्याण करें । ईर्षा, द्वेष, हिंसा, तुम्हारे मनमें न हों, प्रेमका प्रसार हो, आत्माकी ज्योति तुम्हारी पथप्रदर्शक हो । तुम अमर हो, तुम अमृत हो, तुम आत्मा हो, तुम ब्रह्म हो, तुम शुद्ध बुद्ध मुक्त हो । तथास्तु ।

मृत्यु ।

—:०:—

तू आ गई? अभीसे? पहलेसे कुछ भी सूचना नहीं दी? बिना बुलाये? बिना जरूरत? ना, तू लौट जा। अब मैं नहीं मरना चाहता।

एकदम सिरपर क्यों खड़ी है? थोड़ा पीछे हट कर खड़ी हो। ठहर, जरा मुझे एक साँस और लेने दे। गला क्यों घोटे डालती है।

वह तू ही थी? एक बार आँख भर कर तो देख लेने दे, कैसा तेरा रूप है। तुझे तो कितनी बार पुकारा था। मनने कहा था, सब दुःखोंकी शान्ति तेरे पास है। तू सब कष्टोंकी दवा है। तब तू न आई थी। कष्ट मिट गये। अब क्या काम है? ना। अब मैं तुझे नहीं चाहता। जा। वे दिन कट गये हैं। कितना लम्बा जीवनपथ काटा है। रास्ते भर चाहनाने उकसाया और आशाने झाँसे दिये, सिद्धिके नाम सदा दो धक्के मिले। मैंने सोचा, जब चल ही दिया हूँ तो मंजिल तो तै करनी ही होगी। मैंने झूठ देखा न सच, पाप देखा न पुण्य, सिद्धिकी आराधना की। जैसे बना, धर्मकी हत्या की,

आत्मसम्मानको जूते लगाये, स्वास्थ्यको संखिया दिया, सुख और शान्ति तकको दुर्वचन कहे। अन्तमें सिद्धि मिली है—मिली कहाँ मिलनेको सिर्फ राजी हुई है। अब तू कहती है—"चलो—अभी चलो!" ना, अभी नहीं। अभी तो थाल परस कर सामने आया है। तेरा कसूर नहीं। सारा समय तैयारीमें बीत गया, रसोई बनी ही बहुत देरसे, इतनी देरसे कि बनते बनते भूख ही मर गई, जठराग्नि जठरको खाकर बुझ गई, मन थक कर सोने लगा। पर जब बन ही गई है, तो खा लूँ—जरा चख ही लूँ। इतनी साधनाकी वस्तु कहीं छोड़ी जाती है? तू थोड़ी और कृपा कर। अभी जा। मेरी इच्छा होगी तो मैं फिर तुझे पुकार लूँगा। पहले भी तो पुकारा था। अनेक बार पुकारा था। तुझे शपथ है, बिना बुलाये मत आना। दुखके दिन तो बीत गये, अब किसे मरनेकी चाह है?

लौट नहीं सकती? किसी तरह नहीं? यह तो बड़ा अत्याचार है। अच्छा, किसी तरह भी नहीं? हाय! मैंने तो कुछ तैयारी भी नहीं की। यात्रा क्या छोटी है? यात्रामें ही जीवन गया, अब फिर महायात्रा? हे भगवान्! यह कैसा संसार है? शास्त्र कहते हैं—"यह चक्र है।" अच्छी बात है—चक्र है तो घूमा करे। किसीका क्या हर्ज है? पर यह दूसरोंको घुमाता क्यों है? किस मतलबसे? किस अधिकारसे? यह तो खासी धींगा मुश्ती है। बड़ा अत्याचार है। जब तक जीओ तब तक संसारयात्रा, और जीनेके योग्य न रहो तो परलोकयात्रा! अभागा जीव केवल नित्ययात्री है, जिसे विश्रामका अधिकार ही नहीं। हाय! यह पहले मालूम होता तो यह महल, यह सुख साज, ये ठाठ बाट, यह मोह मैत्री-व्यवहार क्यों बढ़ाता? इस महलकी सफेदीके पीछे कितने दीनोंका खून है? इस मेरे बिछौनेके नीचे कितनोंकी रोटीका

सत्त्व है ? तब यह बात मालूम हो जाती, तो यह सब क्यों करता ? तब तो सोचा था। एक दिनकी बात तो है नहीं, जो दुःखम सुखम काट लें। मरनेवाले मरें। घर आई लक्ष्मीको क्यों छोड़ें ? हाय! अब उन्हें कहाँ पाऊँ। उनका व्यर्थ शाप लिया। मृत्यु! थोड़ा ठहर! अब यह सम्पदा तो व्यर्थ ही है। ठहर! इसे उन्हें बाँट जाऊँ जिनके कण्ठसे निकाली गई है। पर उनमें कितने बचे हैं ? कितने भूखे तड़प कर मरे, कितने जेलमें मिट्टी काटते मरे। उनकी स्त्रियोंने जवानीमें विधवा हो कर मुझे कोसा। यह माना कि उन पर मेरा ऋण था। पर यदि उन पर नहीं था—सचमुच नहीं था, तो क्या मुझे उन्हें जेलमें डलवा देना चाहिये था ? पिटवाना चाहिये था ? बर्तन कपड़े नीलाम करा लेने चाहिये थे ? मुझे कमी क्या थी ? बुरा किया, गजब किया। हे भाइयो, क्षमा करना। अकेला जा रहा हूँ। मृत्यु! मृत्यु! क्या इसमेंसे थोड़ी भी नहीं ले जा सकता हूँ ? थोड़ीसी, सिर्फ तसल्लीके लिये। क्या किसी तरह नहीं ? हाय! हाय! अच्छा मृत्यु! ले, आधा ले ले। इस समय टल जा। सब ही ले जा, पर मुझे छोड़ दे।

हरे राम! तुझे दया नहीं है। कैसी निष्ठुर है, मूर्तिमती हत्यारी है। ऊपर क्यों चढ़ी आती है ? ना—ना—छूना मत। हाथ मत लगाना। छूत ही मर जाऊँगा। हाय! हाय! सब यहीं रहे ? मैं अकेला चला। कुछ भी पहलेसे मालूम होता, तो तैयारी कर लेता। भगवानका नाम जपता, पुण्य-धर्म करता। कुछ भी न कर पाया। विश्रामके स्थल पर पहुँच कर एक साँस भी अघा कर न ली कि डायन आगई। हे भगवान्! हे विश्वंभर! हे दीनबन्धु! हे स्वामी! हा—नाथ! हे नाथ! हे नाथ! तुम्ही हो—तुम्ही हो—तुम्ही हो।

रुदन ।

अन्तमें वह घड़ी भी आही पहुँची । मुझे भास गया, कच्चे धागेमें तल्वार लटक रही है, क्या जाने कब टूट पड़े । हवाके झोंके झकझोर रहे थे । मन रोना चाहता था पर स्थान न था । रातहीको

यह विचार लिया था। सवेरे जब नीचे उतरा, माताने कहा—"बेटा! कलाको देखना तो, आज वह कैसा कुछ करती है। मेरा कलेजा काँप उठा। मैंने मनमें कहा—क्या घड़ी आपहुँची? हिम्मत करके भीतर गया। अँधेरा था। सारी खिड़कियाँ बन्द थीं। एक मिट्टीका दिया टिमटिमा रहा था। मैंने खाटके पास जाकर देखा—काँप गया। सचमुच घड़ी आ पहुँची थी। मैं एकटक देखता रहा—न बोला न चाला। माताने कहा—"बेटी! देख तो यह कौन है?" उसे चैन नहीं था। साँसमें कष्ट होता था। उसने उस कष्टको सहकर मेरी ओर देखा। आँखें सफेद थीं, फटकर दूनी हो गई थीं। उन्हीं आँखोंमें-से आँसुओंकी धार बह चली। मुझसे कुछ भी न बन पड़ा। माताने उसके आँसू पोंछकर कहा—"बिटिया! देखो तो यह सामने कौन है।" कलाने बड़े कष्टसे कहा—"बड़े भैया।" इतनेहीमें वह हाँफने लगी। उसे दो एक हुचकी आई। पिताजी उसे गोदमें लिये बैठे थे। उन्होंने गद्गद कण्ठसे कहा—"घबराओ मत भाइयो! सब भगवानसे प्रार्थना करो, अब तो यह हमारी है नहीं, भगवान् दे जाय, तो दे भी जाय! वे सँभल न सके, रोने लगे। कला उनकी गोदमें झुक गई। उसका रंग फक हो गया था। सब झपट कर ऊपर लपके। सबने मानो एक मन, एक प्राण, एक स्वरसे कहा—"कला! कला!" मैं ठहर न सका। वहाँसे साँस बन्द करके बाहर भागा। बाहर उसके सुसरालके आदमी, उसके पति, उद्विग्न बैठे थे। सब बोले—"क्या हाल है?" मैंने बोलना चाहा,—पर बोल न सका। भीतरसे रुदन उठा। प्रथम एक कण्ठ, पीछे अगणित—अथाह गगनभेदी रुदन। सबने कहा—"क्या हो गया?" पिता पागलकी तरह दौड़े आये। उनकी आँखोंमें आँसू नहीं थे। उन्होंने गाकर कहा—"लुट गया

धींग धनी धन तेरा।" उनके नेत्रोंमें उन्माद था। दो चार पड़ौसियोंने उन्हें पकड़ कर धैर्य रखनेकी प्रार्थना की। उन्होंने करारे स्वरमें कहा? "मैं क्या रोता हूँ ? मैं क्या बालक हूँ ? मुझे क्या तुम बेसमझ समझते हो?"

मैं यहाँ भी न ठहर सका। भीतर गया। माताने आकाश फाड़ रक्खा था। वह कलाके शरीरको छोड़ती ही न थी। मैंने उसे गोदमें लिया। पर कुछ बोल न सका। मैं भी रो रहा था। मनको रोका। मैंने कहा—"अम्मा! रोओ मत। तुम्हारी बेटीका भाग्य कितनोंकी बेटियोंसे अच्छा है। वह जहाँ गई, धन धान्य लक्ष्मीको लेकर गई। अब वह सुहागन ही पृथ्वीसे जा रही है। ऐसा सौभाग्य कितनी स्त्रियोंको मिलता है?"

माको कुछ आश्वासन मिला। उसके उन्माद पर कुछ सावधानीके छींटे पड़े। उसने गगनभेदी क्रन्दन छोड़ कर कलाका गुणगान शुरू किया। अब मैं ठहर न सका। स्मृतिने कष्ट देना प्रारम्भ किया। बचपनसे अबतकके चित्र सामने आने लगे। पिताजीने बाहरसे ही स्वर अलापा—"लुट गया धींग धनी धन तेरा।" मैं वहाँसे भी भागा। ऊपर जाते हुए देखा, सीढ़ियोंमें सुभगा पड़ी ठुसुक रही थी। मैं उसे उठाकर ऊपर ले चला। मेरे छूते ही वह बिखर गई। वह क्रन्दन, वह मर्मस्पर्शी उक्तियाँ, वह भयंकर हाय, सर्वथा असह्य थी। जाता कहाँ? छाती गले तक भर रही थी। जरूरत रोनेकी थी, पर रोनेको जगह न थी। जगह एकान्त चाहिये। पर उस घरका वायुमण्डल रुदनसे भर रहा था। पड़ोसीकी स्त्रियाँ घरमें जुट रहीं थीं। पड़ोसी द्वार पर इकट्ठे हो रहे थे। आश्वासन रुदनको बढ़ाता था। धैर्यका ठीक न था। विकलता थी, जलन थी, सन्ताप था, खिसियाहट थी, अशक्ति थी, लाचारी थी। और रुदन था—रुदन था—रुदन था और रुदन था।

लालसा ।

ना! उसका नाम नहीं बताऊँगा। लज्जा जीने न देगी। वह नाम जहरे क़ातिल है। इतने दिन हुए, पर आज तक उससे रोम रोम जल रहा है। विचारशक्ति छितरा कर बिखर गई थी। बुद्धि पुरानी रुईकी तरह उड़ गई थी। मेरे सुख और दुःखके बीच वही एक नावोंका निर्मूल पुल था। जब मैं लालसाकी नदीके किनारे पहुँचा तो देखा--जहाँ मैं खड़ा हूँ उसके चार ही कदमके फासले पर--वह पुल है। मेरा कसूर क्या था? इतने नजदीक पुलको छोड़ कर कौन तैर कर पार करेगा? पार करनेपर---बस वह दिन है और आजका दिन है।

उसपार जाना जरूरी था। लालसाकी नदी बे-तरह चढ़ रही थी और किनारेकी भूमि उर्वरा हो रही थी। पासमें सुख बहुत थोड़ा था। उसने कहा "कुछ तुम्हारे पास है कुछ मेरे। आओ इसे बो दें। एकके हजार होंगे। अभी जिन्दगी बहुत है। इतनेसे कैसे चलेगा?" मेरा दिल घावोंसे छलनी हुआ पड़ा था; न मुझे रुचि थी, न उत्साह, न हौंस। इसके सिवा, मुझे बोनेका तजुर्बा नहीं था। बोना मेरे प्रारब्धके अनुकूल भी नहीं था। जब जब बोया, सूका पड़ गया या वन-पशु चर गये। पशु बने बिना रखाना कठिन है। मुझे खूब याद है। मैंने बहुत नांह नूंह की थी। मैंने कहा था "मुझे कहाँ बोना आता है? क्यों पासकी मायाको मिट्टीमें मिलाती हो? ना, मुझे इसकी हौंस नहीं है। तुम जाओ।"

इसीपर उसने मुझे मूर्ख बनाया। मेरा मजाक उड़ा कर कहा--"मूर्ख! देखता नहीं है? यह नदी चढ़ रही है। ऐसी कितनी बार चढ़ती है? किसके इतने भाग हैं? बोनेवाले एक एक बूँदको तरसते हैं। औसर चूकनेपर क्या है? बो-बो-बो।"

मैं मूर्ख बन गया। स्त्रीका मूर्ख कहना नहीं सहा गया। पर मूर्ख बन गया। जो कुछ था उसे दे डाला। भूमि उर्वरा थी, वह उगा भी, पका भी और मुझे मिला भी। पर पचा नहीं। शरीर ढेर हो चुका था। इतने दिनोंके आँधी मेहोंने कुछ न छोड़ा था। मैं गिर गया। खा कर! लोग भूखों मरते हैं, मैं अघाकर मरा। धौले केशोंपर धूल पड़ी। बुढ़ापेकी मिट्टी ख्वार हुई। बात बन कर बिगड़ी। आबरूकी पगड़ीकी धज्जियाँ उड़ गईं। मेरा क्या अपराध था? साहसमें तो कसर छोड़ी न थी। चिन्ताकी भयंकर आग इस तरह छातीमें छिपाई थी कि एक लौ भी न दीखने पाई। शोकके घाव कपड़ोंसे ढक लिये थे। चहरेकी झुर्रियोंको हँसकर और आँखोंकी रुखाईको चश्मेसे ढक लिया था। पर हाय रे बुढ़ापे! तेरा बुरा हो। तेरा सत्यानाश हो। अत्या-नाश हो। तेनें सब गुड़गोबर कर दिया। तेनें मरेको मारा। तेनें सूखे पेड़को जड़से ही उखाड़ पटका निर्दयी!!

उसे कुछ परवा ही न थी। हँसती थी। उसी तरह। बल्कि उससे भी अधिक जोरसे। सफलताका गर्व उसके होठों और नेत्रोंमें मस्ती कर रहा था और यौवनका गर्व उसकी छातीसे फूटा पड़ता था। मैं कहाँ तक तन कर खड़ा होता? मैं हार गया। वह सब कुछ ले चली। मैंने घायल सिपाहीकी तरह आखोंके अनुनयसे रसकी एक बूँद—सिर्फ एक बूँद माँगी थी। क्या उस सरोवरमें एक बूँदसे घाटा पड़ जाता? जब मेरे दिन थे तो बिन माँगे छक जाता था। वही मैं था। वह दुपहरीके सूर्यकी तरह ज्वलन्त नेत्र दिखा कर चली गई। कलेजा तक झुलस गया। यही दुनिया है। इसीमें रहनेको प्राणी क्या क्या करता है। यही दुनियाका अन्त है। जानेवालोंके लिये दुनियाका यही प्यार है। वाहरी दुनिया! और वाहरे तेरा अन्त!!!

मुक्ति।

यही है वह। पर न देख सकता हूँ—न समझ सकता हूँ। बुद्धि चरने चली गई, मनका पता नहीं। कठिनतासे इतना मालूम होता है कि मैं हूँ, परन्तु कहाँ और कैसा? न कोई परिधि न रूप-रेखा। न भार न अवकाश। मानों मैं नहीं हूँ। तब मेरा यह ज्ञान किस आधार पर है? एक ज्योति चारों तरफ फैली देखता हूँ, पर उसके केन्द्रका कुछ पता नहीं लगता। ज्ञानकी सारी गुत्थियाँ सुलझी हुई अनुभव होती हैं पर वह ज्ञान कुछ समझनेमें सहायता नहीं करता है। सबको छूता हूँ, सब रसका स्वाद बराबर आ रहा है, सब स्वर व्याप्त हो रहे हैं, सब-गन्ध बस रही हैं। पर किस तरह? सो पता नहीं लगता। अपूर्व है। सब अपूर्व है। यहाँ सब प्राप्त है। अब मालूम होता है, इच्छा एक रोग था। मन एक बेगार थी। इन्द्रियाँ भार थीं। मूर्ख

था। इन्हें खूब सजाया। उल्लूकी तरह नाचा। गधेकी तरह लदा फिरा और अपराधीकी तरह बँधा रहा। ठहरो। मुझे अपने आपको समझ लेने दो। वाह! मैं क्या हूँ? जहाँ इच्छा जाती थी अब वहाँ मैं जा सकता हूँ, जो मन करता था वह मैं अब कर सकता हूँ। बड़ा मजा है, बड़ा आनन्द है, बड़ा सुख है। कभी नहीं मिला था। मानों मैंने स्नान किया है। या? ठहरो सोचने दो, कुछ भी समझमें नहीं आता। मानों तंग कोठरीकी कैदसे निकल कर स्वच्छ हरेभरे मैदानमें आ गया हूँ। कहीं भी दर्द नहीं है। कहीं भी कसक नहीं है। न प्यास है न भूख। न उठना, न बैठना, न सोना। सब कुछ मानो एक साथ स्वयं हो रहा है, प्रतिक्षण हो रहा है। यह क्या है! इतना तेज! इतना व्याप्त! यह लो लीन हो गया। जैसे लहर लीन हो जाती है, जैसे स्वर लीन हो जाता है। वह भी मैं ही हूँ। मैं! अनन्तमें फैल गया हूँ! न आदि है न अन्त, न रूप है न स्पर्श—केवल सत्ता है। वह शुद्ध बुद्ध मुक्त है। प्यास सी बुझ गई है। काँटासा निकल गया है। नींद सी आ गई है। कुछ नहीं कह सकता। कथनके बाहर है। प्रकाशका कण हो गया हूँ। कणका प्रकाश मैं हूँ। व्याप्त सामर्थ्यकी धार बह रही है—पर क्षय नहीं होती। वह कहींसे आ भी रही है। न शीत है न उष्ण, न इधर है, न उधर। कहना व्यर्थ है। अब अप्रकट कुछ नहीं। प्राप्य कुछ नहीं। महान् कुछ नहीं। किसीका अस्तित्व नहीं दीखता। केवल मैं हूँ। मैं वही हूँ। यह वही है। यही है वह।

हमारे उत्तमोत्तम ग्रन्थ।

हमारे यहाँसे हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज नामकी ग्रन्थमाला निकलती है। हिन्दीमें यह सबसे पहली और सबसे अच्छी ग्रन्थमाला है। हिन्दीके बड़े बड़े विद्वानोंने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। उपन्यास, नाटक, प्रहसन, साहित्य, इतिहास, समालोचना, जीवनचरित्र, विज्ञान, अध्यात्म, सदाचार, राजनीति आदि विविध विषयोंके अबतक ५० ग्रन्थ इसमें निकल चुके हैं और बराबर निकल रहे हैं। इसके स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं। आठ आने प्रवेश फीस देनेवाले स्थायी ग्राहक हो जाते हैं।

इसके सिवाय हमारे यहाँसे एक प्रकीर्णक पुस्तकमाला भी निकलती है। इसमें भी अबतक लगभग ४० पुस्तकें निकल चुकी हैं। पर वह नियमित नहीं है, इसलिये उसके स्थायी ग्राहक नहीं बनाये जाते। एक कार्ड लिखनेसे सब ग्रन्थोंका सूचीपत्र मुफ्त भेजा जाता है। कुछ खास खास ग्रन्थोंकी सूची यहाँ दी जाती है:—

उपन्यास।		नाटक।	
प्रतिभा मूल्य	१।)	दुर्गादास	१≈)
आँखकी किरकिरी	१॥≈)	राणा प्रतापसिंह	१॥)
शांतिकुटीर	॥।≈)	मेवाड़-पतन	॥।≈)
अन्नपूर्णाका मन्दिर	१)	सिंहल-विजय	१≈)
छत्रसाल	१॥)	भारत-रमणी	॥।≈)
सुखदास	॥≈)	उस पार	१≈)
नीति।		**जीवनचरित।**	
स्वावलम्बन	१॥)	आत्मोद्धार	१)
अस्तोदय और स्वावलम्बन	१≈)	अब्राहम लिंकन	॥≈)
जीवन-निर्वाह	१)	कोलम्बस	॥।)
युवाओंको उपदेश	॥=)	कावूर	१)

पता—मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।